जून 1993 तीन रुपये

गाँवों में पीने के पानी की समस्या

आठवीं योजना के दौरान पेयजल उपलब्ध कराने के लक्ष्य

1. बिना जल स्रोत वाले शेष सभी गांवों को आठवीं योजना के प्रारंभिक वर्षों में कवर करना।
2. योजना के अंत तक 'बिना जल स्रोत' वाली सभी बस्तियों को स्वच्छ पेयजल की सतत सप्लाई मुहैया कराना।
3. गिनी कृमि का पूरी तरह उन्मूलन करना तथा पेयजल में फ्लोराइड, खारेपन लौह आदि की मुख्य समस्याओं से निपटना।
4. सभी गांवों में पेयजल सप्लाई की मात्रा में वृद्धि करना तथा जल की गुणवत्ता में सुधार लाना।
5. ग्रामीण जल सप्लाई में वैज्ञानिकों का सहयोग प्राप्त करने के प्रयासों में तेजी लाना, विशेषकर जल स्रोतों का पता लगाने तथा भूजल स्रोतों की सम्पूर्ति के लिए प्रयासों को तेज करना।
6. जल सप्लाई प्रणाली के संचालन और रख रखाव में सुधार लाना।
7. पूरे देश में जल की गुणवत्ता को सुनिश्चित करना।

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास मंत्रालय का प्रमुख मासिक
'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य, चित्र आदि भेजिए। लघु कथाओं का भी स्वागत है। अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है। 'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने व अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली--110001 से कीजिए।

वर्ष 38 अंक 8 ज्येष्ठ-आपाढ़ 1915, जून 1993

संपादक : **राम बोध मिश्र**
सह संपादक : **बलदेव सिंह मदान**
उप संपादक : **ललिता जोशी**

विज्ञापन प्रबंधक : **बैजनाथ राजभर**
सहायक व्यापार व्यवस्थापक : **एड्वर्ड बैक**
उत्पादन अधिकारी : **एस.एम. चहल**
आवरण सज्जा : **एम.एम. मलिक**

एक प्रति : 3.00 रु० वार्षिक चंदा : 30 रु०

फोटो साभार : रमेश चन्द्र, फोटो प्रभाग, ग्रामीण विकास मंत्रालय

विषय सूची

ग्रामीण पेयजल : समस्या और समाधान 3
प्रदीप पंत
पीने का साफ पानी : ग्राम विकास की सबसे पहली जरूरत 6
डा. रमेश दत्त शर्मा
ग्रामीण पेयजल व्यवस्था : स्थिति एवं संभावनाएं 9
भंवर लाल हर्ष
ग्रामीण पेयजल-लक्ष्य और उपलब्धियां 11
सुभाष चन्द्र सत्य
हम कहां तक पहुंचे हैं और कहां पहुंचना है ? 14
शशि बाला
ग्रामीण महिलाओं के लिए अतिरिक्त आय का स्रोत 18
डा. एम.एम. कुमार
ग्रामीण विकास में सहकारिता की भूमिका 21
सुन्दर लाल कुकरेजा
सहकारिता के आधार पर रोजगार सृजन 23
चन्द्र शेखर मिश्रा
विकास की रोशनी से कोसों दूर : भारतीय महिला मजदूर 28
डा. देवनारायण महतो
आखिर इस दर्द की दवा क्या है ? 31
हरि बिश्नोई
लघु एवं कुटीर उद्योग 35
सुबह सिंह यादव
बांस एक अति उपयोगी पौधा 39
डॉ. जयप्रकाश, एन.राय व सूर्यप्रकाश मिश्र
सहकारी संस्थाओं में प्रबंध का व्यवसायीकरण 41
आर.पी.सेकड़ा
ग्रामीण महिला एवं बाल विकास: एक विवेचन 43
प्रो. गोपाल लाल
उन्नत घासों द्वारा ऊसर भूमि सुधारें 47
बनवारी लाल सुमन एवं मंजू सुमन

प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

सम्पादकीय पत्र व्यवहार सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), ग्रामीण विकास मंत्रालय, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें। **दूरभाष : 384888**

सिविल सर्विसेज़ (प्रा.)
परीक्षा विशेषांक - 5
जून 1993

प्रतियोगिता सम्राट

प्रतियोगिता जगत का संपूर्ण मासिक

पृष्ठ 132

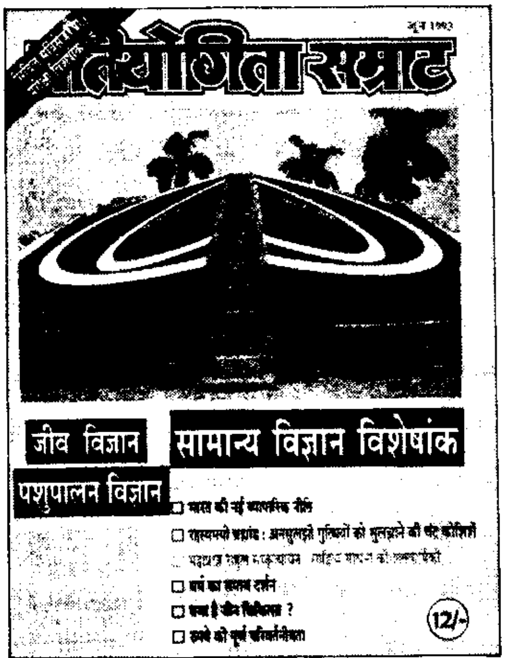

12/-

सभी प्रतियोगी परीक्षाओं
में निश्चित सफलता
के लिए

शुल्क :
प्रति अंक 12/- ;
वार्षिक 120/-
अपना वार्षिक शुल्क/आर्डर
निम्न पते पर भेजें :

दीवान पब्लिकेशंज़ प्रा. लि.
L-1, कंचन हाउस,
नजफगढ़ रोड कमर्शियल कॉम्पलैक्स,
नई दिल्ली-110015

श्रृंखला 5

सामान्य विज्ञान (भाग-1)

राज्यों एवं संघ लोक सेवा आयोग की प्रारंभिक परीक्षाओं के लिए सामान्य अध्ययन श्रृंखला

भारतीय अर्थव्यवस्था (भाग - 2)

सामान्य विज्ञान (जीव विज्ञान)

पशुपालन विज्ञान/ वस्तुनिष्ठ

भारतीय अर्थव्यवस्था (महत्वपूर्ण आंकड़े)

☐ रहस्यमय ब्रह्मांड : अनसुलझी गुत्थियों को सुलझाने की चंद कोशिशें ☐ क्या है जीन चिकित्सा ? ☐ डुंकेल प्रस्ताव और भारतीय कृषि ☐ भारत की नई व्यापारिक नीति ☐ भारतीय रुपये की पूर्ण परिवर्तनीयता अंतर संसदीय संघ सम्मेलन

कालजयी कृतिकार महाप्राज्ञ राहुल सांकृत्यायन : साहित्य साधना की शतवार्षिकी

सहयोगी प्रकाशन
क्रिकेट सम्राट
नन्हें सम्राट

ग्रामीण पेयजल : समस्या और समाधान

प्रदीप पंत

पीने का पानी मनुष्य की मूलभूत आवश्यकता है। केवल मनुष्य की ही नहीं, उन सबकी जिनमें प्राण हैं - फिर चाहे वे पशु-पक्षी हों या पेड़-पौधे। अनादिकाल से पानी की महत्ता को मनुष्य ने जाना-समझा है। ऋग्वेदों की ऋचाओं में जल की स्तुति की गई है। हम अक्सर बुजुर्गों से सुनते हैं- ''क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा, पंच तत्व यह अधम शरीरा।'' यानी जल और इन चार तत्त्वों के बिना शरीर का अस्तित्व ही नहीं रह सकता। कवि ने ठीक ही कहा है - ''रहिमन पानी राखिये, बिन पानी सब सून। पानी गए न उबरे, मोती मानस चून।'' मतलब यह कि जल ही जीवन है । अगर हमें दो-चार घंटे पानी न मिले तो हमारी स्थिति कैसी हो जाती है, यह हम सभी जानते हैं। हम यह भी जानते हैं कि चाहे खेती-बाड़ी हो, या कल-कारखाने, सभी के लिए पानी की जरूरत होती है।

कहना न होगा कि इस संसार में तीन चौथाई पानी है और केवल एक चौथाई धरती। किन्तु इतनी भारी मात्रा में उपलब्धता के बावजूद हमें पानी की कमी का सामना करना पड़ता है। जहां एक ओर शहरों में पानी निरंतर कम होता जा रहा है और ज्यादातर जगह कुछ सीमित घंटों तक ही नलों में पानी आता है, वहीं गांवों में पेयजल - अच्छे और साफ पेयजल- की समस्या अत्यंत विकट है। आजादी के साढ़े चार दशक बाद भी और देश के नियोजित विकास के बावजूद हमारे बहुतेरे गांव आज भी सही अर्थों में पेयजल से वंचित हैं। तालाबों, पोखरों, झरनों, नहरों आदि से लोग पानी लेकर आते और इस्तेमाल करते हैं, जो अक्सर दूषित होता है। परिणामस्वरूप गांवों के अनेक स्त्री-पुरूषों और बच्चों व बूढ़ों को कई तरह की बीमारियां घेर लेती हैं, जिनमें से कई तो जानलेवा भी होती हैं।

खेती के विकास के लिए देश में अनेक जल परियोजनाएं आरंभ की गईं। पहली से लेकर छठी पंचवर्षीय योजना तक कुल 246 छोटी और बड़ी सिंचाई परियोजनाएं आरंभ की गईं और इनमें से 65 को पूरा किया गया। कमान क्षेत्र विकास के अनेक कार्यक्रम चलाए गए, बाढ़ प्रबंध किया गया, भाखड़ा, महानंदा, थीन, बाणसागर, मयूराक्षी आदि बांध परियोजनाओं पर अमल किया गया, पाकिस्तान के साथ सिंधु जल समझौता किया गया, भारत-बंगला देश संयुक्त नदी आयोग बनाया गया, केन्द्रीय भूमिगत जल बोर्ड की स्थापना की गई, फरक्का बांध परियोजना क्रियान्वित की गई और इस प्रकार के अन्य अनेक छोटे बड़े कदम उठाए गए। फलस्वरूप देश में खेती का पर्याप्त विकास हुआ और हो रहा है। गंगा बाढ़ नियंत्रण आयोग, ब्रह्मपुत्र वोर्ड, नर्मदा नियंत्रण प्राधिकरण आदि से भी कृषि विकास में उल्लेखनीय सहायता मिली है। किन्तु गांवों में पीने के पानी की पर्याप्त सप्लाई की समस्या अभी बहुत हद तक बनी हुई है।

संविधान के अंतर्गत पीने का पानी उपलब्ध कराना मुख्य रूप से राज्य सरकारों का दायित्व है और इसे राज्य सरकारों की योजनाओं के अंतर्गत न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम में शामिल किया गया है। नए 20 सूत्री कार्यक्रम में गांवों में साफ पीने का पानी सप्लाई करने को एक सूत्र के रूप में रखा गया है। इसके अलावा त्वरित जल आपूर्ति कार्यक्रम भी लागू किया गया है, जो पूरी तरह से एक केन्द्रीय कार्यक्रम है। इससे स्पष्ट होता है कि केन्द्र सरकार गांवों में जल आपूर्ति की समस्या और उसके समाधान के प्रति सतत जागरूक है। इस त्वरित जल आपूर्ति कार्यक्रम के माध्यम से केन्द्र सरकार राज्यों की मदद करती है। यही नहीं, केन्द्र ने गांवों में पीने के पानी की जरूरत को ध्यान में रखते हुए एक राष्ट्रीय मिशन का भी गठन किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि देश में एक साथ तीन प्रकार के कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं - पानी न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अंतर्गत गांवों में पीने के पानी की सप्लाई, त्वरित जल आपूर्ति कार्यक्रम और जल संबंधी राष्ट्रीय मिशन। मिशन का उद्देश्य स्वच्छ पेयजल की आपूर्ति के लिए विज्ञान और टैक्नोलौजी की उपलब्धियों का लाभ उठाना है, ताकि पानी की कमी वाले गांवों में समस्या हल की जा सके। सातवीं योजना के तहत राष्ट्रीय मिशन में विभिन्न राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में लघु मिशन क्षेत्रों और उप-मिशन के रूप में 55 प्रायोगिक परियोजनाएं चलाई हैं। देश की सातवीं पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत उन गंभीर रूप से समस्याग्रस्त गांवों को तरजीह की गई जिनमें छठी योजना के अंतर्गत पानी पहुंचाने

में सफलता नहीं मिल सकी थी। साथ ही उन गांवों पर भी ध्यान दिया जा रहा है, जिनका बाद में समस्याग्रस्त गांवों के रूप में चयन किया गया था। इसके पश्चात उन गांवों को लिया जा रहा है, जिनमें पेयजल आपूर्ति की दृष्टि से आंशिक रूप से काम हो चुका है। यहां यह भी स्पष्ट कर दिया जाए कि वही गांव समस्याग्रस्त कहलाता है जहां या तो 1.6 किलोमीटर की दूरी तक अथवा 15 मीटर की गहराई तक पानी का स्रोत नहीं है। हमारे रेगिस्तानी क्षेत्रों में ऐसे तमाम क्षेत्र हैं। इसके अलावा एक अन्य प्रकार के गांव भी समस्याग्रस्त हैं - यानी वे गांव जहां उपलब्ध पानी में खारापन, लौह तत्व, फ्लोराइड या अन्य विषाक्त तत्व हैं या जहां हैजा, नेहरूआ, कीड़े आदि की बीमारी खराब पानी के कारण फैलती है।

देश में पेयजल आपूर्ति कार्यक्रम योजनाबद्ध चरणों में चलाया जा रहा है। इसके तहत पहली प्राथमिकता समस्याग्रस्त गांव हैं। इसके बाद उदार शर्तों पर गांवों में पेयजल पहुंचाने अर्थात आधे किलोमीटर की दूरी तक पीने के पानी की सुविधा मुहैया करने और जल आपूर्ति के वर्तमान स्तर को बढ़ाने का लक्ष्य रखा गया है। जल आपूर्ति का वर्तमान स्तर 40 लिटर प्रति व्यक्ति प्रति दिन है जिसे 70 लिटर प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन करने की योजना है। वर्तमान समय में ढाई-तीन सौ की जनसंख्या पर एक जलस्रोत यानी हैंडपंप लगाने अथवा स्टेंड पोस्ट के नलकूप खोदने का प्रबंध किया गया है। अब लक्ष्य है कि यह व्यवस्था प्रति डेढ़ सौ की आबादी पर की जाए। इस लक्ष्य के अंतर्गत अनुसूचित जातियों और जनजातियों को प्राथमिकता दी जा रही है। यानी वहां यह काम पहले किया जा रहा है, जो अनूसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति बहुल क्षेत्र हैं।

सातवीं पचवर्षीय योजना के अंतर्गत 1.62 लाख समस्याग्रस्त गांवों में पीने के पानी का प्रबन्ध किया जाना था। योजना के प्रथम तीन वर्षों में 1,06,000 गांवों में पेयजल की व्यवस्था कर दी गई है। सातवीं योजना के तहत केन्द्र के त्वरित जल आपूर्ति कार्यक्रम के अंतर्गत 1,201.22 करोड़ रुपयों, राष्ट्रीय मिशन के अंतर्गत 150 करोड़ रुपयों और राज्य क्षेत्र के न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अंतर्गत 2,253.25 करोड़ रुपयों का प्रावधान किया गया। इस प्रकार कुल मिलाकर तीनों के अंतर्गत 3,604.47 करोड़ रुपयों का बजट रखा गया। यद्यपि यह काफी बड़ा बजट है, लेकिन चूंकि हमारे देश में 75 प्रतिशत से अधिक आबादी गांवों में रहती है, इसलिए इतने बड़े बजट के बावजूद प्रत्येक गांव तक स्वच्छ पेयजल पहुंचाना अभी सपना ही है और छोटे परिवार के विचार के तमाम प्रचार-प्रसार के बावजूद जिस अनुपात में जनसंख्या वृद्धि हो रही है, उसे देखते हुए नहीं लगता कि अकेले सरकार इस सपने को साकार कर लेगी।

भारत एक लोकतंत्र है। किसी लोकतंत्र की सफलता की कसौटी है जनसहयोग। खासतौर पर जनसामान्य से जुड़े मसलों को हल करने के लिए तो जनसहयोग और भी जरूरी है। एक जमाने में इसी जनसहयोग की भावना से 'श्रमदान' नामक आंदोलन का विकास हुआ था। आजादी से पहले महात्मा गाधी ने हरिजन बस्तियों की सफाई, नशाबन्दी, बुनियादी तालीम, कुष्ठरोग निवारण आदि अपने 'रचनात्मक कार्यक्रमों' के लिए ब्रिटिश सरकार से सहयोग लेने के बजाय आम जनता से सहयोग लेने पर बल दिया था और भरपूर सहयोग मिला था। आज पराये देश से आई हुई सरकार नहीं है, इसलिए अब तो जनता और सरकार के सहयोग से बहुत कुछ किया जा सकता है। इस हेतु जरूरी है कि स्वयंसेवी संगठन आगे आएं। कई क्षेत्रों, जैसे विकलांग कल्याण, शिक्षा प्रसार, गरीब महिलाओं के आर्थिक विकास आदि कार्यक्रम के अंतर्गत स्वयंसेवी संगठनों ने काफी काम किया है। सामाजिक वानिकी, पर्यावरण को बेहतर बनाने, पिछड़े लोगों में उनके अधिकारों के प्रति चेतना जगाने आदि के लिए भी हमारे अनेक स्वयंसेवी संगठन प्रयत्नशील हैं। लेकिन गांवों में पेयजल की सप्लाई जैसे मुद्दों पर अभी स्वयंसेवी क्षेत्र को ज्यादा सक्रिय नहीं देखा गया है। जरूरी है कि इस दिशा में भी वे आगे बढ़ें और अपने- अपने इलाकों के गांवों के लिए जल आपूर्ति की ऐसी व्यावहारिक योजनाएं बनाएं जिन्हें सरकारी सहायता और क्षेत्र के लोगों के श्रमदान से लागू किया जा सके।

अच्छे किस्म के हैंडपम्पों का विकास करना भी बहुत जरूरी है। आज बाजार में जो हैंडपंप मिलते हैं, देखने में आया है कि वे जल्दी ही खराब हो जाते हैं। हमारे ग्रामीण गरीब हैं। उनके पास इतना पैसा नहीं कि वे हैंडपंपों को बार-बार बदल सकें। यूनिसेफ ने इस दिशा में काम किया है। उसके इस प्रयास का प्रचार-प्रसार होना चाहिए।

ग्रामीण पेयजल की सप्लाई के लिए ग्राम पंचायतों को भी आगे बढ़कर काम करना चाहिए। हमारी पंचायतें प्रायः राजनीतिक और जातीय गुटबाजी के अड्डे बन कर रह जाती हैं। लेकिन यदि पंचायतें और अन्य स्थानीय संस्थाएं कोशिश करें तो वे ग्रामविकास के क्षेत्र में चमत्कार करके दिखा सकती हैं। उनके पास शक्ति और जनसमर्थन होता है। जरूरत है इस शक्ति और जनसमर्थन का सदुपयोग करने की। यदि प्रत्येक पंचायत यह

प्रण कर ले कि वह अपने क्षेत्र में साफ पीने के पानी की सप्लाई जैसे कार्यों को तरजीह देगी तो वह क्षेत्र के खंडविकास अधिकारी, कलैक्टर आदि सरकारी अमले पर दबाव डालकर इस समस्या को सहज ही हल कर सकती है। पंचायत की सक्रियता से भ्रष्टाचार भी मिटेगा और हमें यह सुनने को नहीं मिलेगा कि अमुक ग्रामीण अंचल में कागजों पर तो नलकूप लग गए, हैंडपम्पों का जाल बिछा दिया गया और कुएं खोद लिए गए, किन्तु वास्तव में कुछ भी नहीं हुआ। ग्राम पंचायतों के दबाव से सरकारी अमला भ्रष्टाचार नहीं कर पाएगा। इसलिए कहा जा सकता है कि चाहे पेयजल की आपूर्ति हो या कोई अन्य स्थानीय ग्रामीण विकास संबंधी मुद्दा, उनके समाधान में ग्राम पंचायतों की अहम भूमिका है।

स्वच्छता और सफाई पर भी ध्यान दिया जाना जरूरी है, क्योंकि प्राय: देखने में आया है कि गांवों में सार्वजनिक कुएं तो खुद जाते हैं किन्तु उनके रख-रखाव और उनकी स्वच्छता व सफाई पर ध्यान नहीं दिया जाता। परिणामस्वरूप ग्रामवासियों को साफ पानी नहीं मिल पाता या थोड़े दिन साफ पानी मिलने के बाद कुओं का पानी दूषित हो जाता है। इस काम को कोई सरकारी एजेंसी हमेशा-हमेशा के लिए अंजाम नहीं दे सकती। सरकार कुएं खुदवा सकती है, किन्तु उनकी उचित देखभाल अंतत: ग्रामवासियों का ही दायित्व है। लेकिन यह दायित्व तभी वे निभा सकते हैं जब गांव वालों को सफाई और स्वच्छता की महत्ता का आभास हो। यहां भी स्वयंसेवी संगठनों की अहम भूमिका है, क्योंकि अशिक्षा के कारण हमारे ग्रामवासी स्वच्छता और सफाई के महत्व से अनभिज्ञ हैं।

आजादी के साढ़े चार दशक बाद अब भी हमारे अनेक गांव सूखाग्रस्त हैं। वहां औरतें मीलों चलकर पानी लेकर आती हैं। इसका कारण यह है कि हमने इन सूखाग्रस्त गांवों तक नहरें नहीं पहुंचाई और जहां पहुंचाई हैं वहां इन नहरों के पानी को पीने योग्य बनाने की समुचित व्यवस्था नही है। अत: जरूरी है कि नदियों को एक-दूसरे से जोड़ा जाए और उनसे अभावग्रस्त क्षेत्रों के लिए नहरें निकाली जाएं, जैसे कि राजस्थान नहर पर काम किया गया है। इसी भांति तटवर्ती क्षेत्रों में खारे पानी को साफ करके गांव-गांव तक पहुंचाने की जरूरत है।

नदियों की नियमित सफाई भी एक जरूरी बात है। हमने गंगा सफाई योजना बनाई और काफी हद तक उस पर काम भी किया गया है। लेकिन केवल गंगा जैसी बड़ी नदी की सफाई ही पर्याप्त नहीं है, वरन् देशभर में फैली हुई तमाम छोटी-छोटी नदियों की सफाई की आवश्यकता है ताकि उनसे वाले पानी से केवल सिंचाई न हो, वरन् उसे पीने लायक भी बनाया जा सके। इस संदर्भ में स्वयं ग्रामवासियों को यह बोध कराया चाहिए कि नदियों को दूषित करने में वे अनजाने ही योगदान करते हैं। शवों को नदियों में बहा देने, नदियों के किनारे शौच करने और मलमूत्र बहाने और गांव का तमाम कचरा नदियों में डालने से उनका पानी कितना दूषित हो जाता है, यह हमारे ग्रामवासी नही जानते। यह सब करके वे यह सोचते हैं कि उन्हें क्या फर्क पड़ रहा है, पानी तो आगे ही बहेगा। लेकिन वे नहीं जानते कि उनसे पीछे के गांव वाले भी ऐसा ही सोच कर पानी को दूषित कर देते हैं, जिसे पीने पर गांव के गांव तरह-तरह की बीमारियों और महामारियों से ग्रस्त हो जाते हैं।

इसके साथ ही उन कल-कारखानों पर भी जुर्माना किया जाना चाहिए जो अपने फालतू रसायनों को नदियों में बहाकर तमाम पशु-पक्षियों, वन्य जीवों और मनुष्यों की जान से खेलते हैं। वर्षों तक हमारे देश में इस ओर ध्यान ही नहीं दिया गया। लेकिन हाल के वर्षों में पर्यावरण मंत्रालय ने इस समस्या को गंभीरता से लेना शुरू किया है। लेकिन अभी भी कल-कारखाना मालिकों में इस गलत मनोवृत्ति के प्रति कोई खास चेतना नहीं जागी है। अत: जरूरी है कि ऐसे कल-कारखानों पर भारी जुर्माना लगाया जाए और जैसे भोपाल गैस कांड के पीड़ितों के लिए 'यूनियन कार्बाइड' को हर्जाना देने पर विवश किया गया है, वैसे ही कारखाना मालिकों को भी विवश किया जाना चाहिए, अन्यथा हमारे ग्रामवासी अशुद्ध जल पीने और बीमारियों से घिर कर अकाल मृत्यु के ग्रास बनने को अनजाने ही विवश होते रहेंगे। लेकिन ध्यान रहे कि भोपाल गैस त्रासदी के बाद यदि 'यूनियन कार्बाइड' पर दबाव पड़ा तो उसमें बहुत बड़ी भूमिका स्वयं जनसामान्य और उनके स्वयंसेवी संगठनों की थी। अत: पर्यावरण को प्रदूषित करने और नदियों के जल को जहरीला बनाने वाले कल-कारखानों के खिलाफ भी जनसामान्य, खासतौर पर ग्रामवासियों और ग्रामीण क्षेत्रों में काम कर रहे स्वयंसेवी संगठनों को अहम भूमिका निभानी होगी।

ये कुछ उपाय हैं जो हमारी ग्रामीण जल आपूर्ति की समस्या का निदान करने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। हां, अंतत: तो हमारी प्रत्येक समस्या का समाधान बढ़ती आबादी पर रोक लगाने में ही निहित है।

सी 2/31 ईस्ट ऑफ कैलाश
नई दिल्ली - 1100 65.

पीने का साफ पानी
ग्राम विकास की सबसे पहली जरूरत

✍ डा0 रमेश दत्त शर्मा

हमारे शरीर का 65 प्रतिशत पानी ही है। देह के इस जलीय अंश का 5 प्रतिशत हर रोज बदला जाता है और इससे बदलने के लिए हर रोज हमें काफी पानी पीने की जरूरत पड़ती है। हमारे देश में सात में से एक आदमी को ही शुद्ध पेय जल उपलब्ध है। अस्सी प्रतिशत संक्रामक रोग अशुद्ध जल से ही पैदा होते हैं। इसलिए विश्व स्वास्थ्य संगठन ने सन् 1981 से 1990 तक के दस वर्षों को "अन्तर्राष्ट्रीय पेय जल संभरण और स्वच्छता दशक" घोषित किया था। इस दशक में संकल्प किया गया था कि सबको स्वच्छ जल उपलब्ध कराया जायेगा। मगर दुनिया को लड़ने मरने से फुर्सत मिले, तो सबके भले के काम पूर हों। विश्वसेवी संगठनों की जी-तोड़ कोशिश के बावजूद मुख्यत: वित्तीय कठिनाइयों के कारण सन् 1991 में जल 'पेय जल-दशक' की उपलब्धियों का लेखा-जोखा किया गया तो पता चला कि दुनिया में 100 करोड़ लोग अब भी शुद्ध पेय जल की सुविधा से वंचित थे। लगभग 180 करोड़ लोग सारी दुनिया में शौचालय तथा मल-जल-निकासी जैसी स्वच्छता संबंधी आवश्यक सुविधाओं के बिना नारकीय जीवन बिता रहे थे।

भारत सरकार ने इस 'अंतर्राष्ट्रीय पेय जल और स्वच्छता दशक' के लिए शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में शत-प्रतिशत पेय जल उपलब्ध कराने का संकल्प किया था। स्वच्छता का लक्ष्य था शहरों में 80 प्रतिशत और गांवों में 25 प्रतिशत। इन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए तत्कालीन-आवास और निर्माण मंत्रालय ने 19,088 करोड़ 30 लाख रुपये मांगे थे। लेकिन 6,522 करोड़ रुपये का ही प्रावधान संभव हो पाया। अत: शत-प्रतिशत की बजाय पेय जल की सुविधा का लक्ष्य काटकर 90 प्रतिशत कर दिया गया।

पेय जल प्रौद्योगिकी मिशन

भारत में सभी को शुद्ध पेय जल उपलब्ध कराने की दिशा में सबसे सुचिंतित बहुमुखी प्रयास सन 1986-87 में शुरू किया गया। जब 'राष्ट्रीय पेय जल प्रौद्योगिकी मिशन' की स्थापना की गई। इस मिशन की स्थापना के बाद सही-सही जांच हुई कि जिन गांवों में शुद्ध पेय जल उपलब्ध नहीं है, वहां वास्तव में समस्या क्या है ? समस्या की सही पहचान करके, फिर उनके तकनीकी समाधान खोजने का काम संबंधित संस्थानों को सौंपा गया। इस तरह पहली बार पेय जल की समस्या सुलझाने के लिए वैज्ञानिकों की मदद ली गई। इसके बहुत अच्छे परिणाम मिले। सातवीं पंचवर्षीय योजना में एक लाख 54 हजार समस्याग्रस्त गांवों में पीने के पानी का कम से कम एक स्रोत अवश्य उपलब्ध कराया गया। इस तरह सातवीं योजना के बाद केवल 8,365 गांव ही ऐसे बच रहे थे, जिनमें पीने के पानी का कोई इंतजाम नहीं था। इन गांवों में खासतौर से औरतों का पूरा दिन कोसों दूर से पानी ढोने में ही गुजर जाता है।

इन 8,365 गांवों में से 3,032 गांवों में पीने का शुद्ध जल सन 1990-91 में उपलब्ध कराया गया। इसी वर्ष पेय जल मिशन का नाम 'राजीव गांधी पेयजल मिशन' रख दिया गया और 190 करोड़ रुपये के प्रावधान से जहां पीने के पानी का कोई भी स्रोत नहीं है वहां पानी उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया। इस तरह के बाकी गांवों में से 2,509 गांवों में 1991-92 में और 2,824 गांवों में 1992-93 में पेय जल उपलब्ध किया जाना था।

गांवों में पानी उपलब्ध कराने के लिए यह तय किया गया कि -

- मनुष्यों को प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति 40 लीटर शुद्ध जल मिले।
- इसके अलावा रेगिस्तानी जिलों में प्रति पशु प्रति दिन 30 लीटर और पानी दिया जाये।
- पानी को स्रोत 1.6 किलोमीटर की दूरी और 100 मीटर की गहराई के दायरे में उपलब्ध हो।
- शुद्ध जल का मतलब है कि उसमें किसी भी प्रकार का जैविक या रासायनिक संदूषण न हो। जैविक संदूषण यानी हैजा, गिनी वार्म (तारू), मोतीझरा वगैरह के रोगाणु न हों और रासायनिक संदूषण यानी खारापन, अधिक लोहा, आर्सेनिक, नाइट्रेट, फ्लोराइड इत्यादि न हों।

अशुद्धियां हटाने के तरीके

इन संदूषणों से मुक्ति के उपाय खोजने के लिए मुख्य रूप से वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद को जिम्मेदारी सौपी गई। गिनी वार्म या तारू की समस्या से निपटने के लिए मार्च 1993 तक पूर्ण उन्मूलन का लक्ष्य रखा गया था। पीने के पानी के जरिये ये कीड़ा पेट में पहुंच जाता है और मरीज का खाया पीया फिर उसकी देह में नहीं लगता और वह कमजोरी का शिकार हो जाता है। गिनीवार्म की समस्या छः राज्यों में फैली हुई है- आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश और राजस्थान। यहां सीढ़ियों वाले कुंओं की जगह ढके हुए सुरक्षित कुएं, हैंडपंप और पाइप के जरिये उपचारित पेयजल उपलब्ध कराने के प्रयास किए गए। इसके फलस्वरूप गिनी वार्म की समस्या काफी कम हो गई है। सन 1986 में इन राज्यों में गिनीवार्म के रोगी थे 27 हजार। जनवरी 1992 में इनकी संख्या घटकर चार राज्यों में 2,184 रह गई थी। राज्यवार देखें तो आंध्रप्रदेश में - 126, कर्नाटक में - 226, मध्यप्रदेश में - 120 और राजस्थान में यूनीसेफ की 52 करोड़ रुपये की सहायता से गिनीवार्म से मुक्त शुद्ध पेय जल उपलब्ध कराने की परियोजनाएं शुरू की गईं। इसमें से 25 करोड़ पेयजल शुद्ध करने और स्रोतों में अभिवृद्धि के लिए रखे गये हैं और 27 करोड़ रुपये की अनुमानित लागत से सीढ़ीदार कुओं को सुरक्षित कुओं में बदला जायेगा।

पानी में फ्लोराइड अधिक होने की समस्या 14 राज्यों और दिल्ली में पायी गयी है। पानी में फ्लोराइड की जांच करने तथा अन्य संदूषणों की जांच के लिए चलती फिरती प्रयोगशालाएं बना ली गई हैं। ये गांवों में जाकर यथास्थान पानी के नमूने लेती हैं, जांचती हैं और वहीं जांच के नतीजे बता देती हैं। यह चलती फिरती प्रयोगशाला नागपुर में स्थित केन्द्रीय पर्यावरण इंजीनियरी अनुसंधान संस्थान ने बनायी है। इसी संस्थान ने पानी को फ्लोराइड मुक्त करने का संयत्र भी बनाया है। इस तरह के अनेक संयंत्र समस्याग्रस्त क्षेत्रों में लगाये गये हैं। पानी में फ्लोराइड की मात्रा अधिक होने पर दांत और हड्डियों पर बुरा असर पड़ता है। समस्याग्रस्त क्षेत्रों में 481 संयंत्र लगाये जाने का लक्ष्य रखा गया था। लगभग 180 संयंत्र लगाये गये, जिनमें से कुछ ने बाद में काम करना बंद कर दिया। इनकी मरम्मत करने और बाकी संयंत्र लगाने के लिए मिशन द्वारा कदम उठाये गये हैं।

पानी में अधिक लोहे की मात्रा भी नुकसान करती है। इससे स्वास्थ्य पर भी दुष्प्रभाव पड़ता है और पानी की पाइपें, नल और हैंड पंप जंग खाकर गल जाते हैं। कुछ खास किस्म के लोहा खाना वाले जीवाणु भी इस पानी में अधिक संख्या में पनपने लगते हैं। यह समस्या 14 राज्यों और पाण्डिचेरी में पाई गई है। पेयजल प्रौद्योगिकी मिशन ने इस समस्या से ग्रस्त क्षेत्रों में पानी में लोहे की मात्रा प्रति दस लाख भाग (पी.पी.एम) पानी में एक भाग लोहा तक कम करने के लिए उपचार संयंत्र लगाने का निर्णय किया। कुल 11,098 लोह-निष्कासक संयंत्र लगाये जाने थे जिनमें से 4,024 संयंत्र लगा दिये गये हैं और काम कर रहे हैं।

बारह राज्यों में अनेक गांवों और शहरों में पानी इतना खारा है कि वह पीने योग्य नहीं है। खारे पानी से मुंह का जायका ही नहीं खराब होता, बल्कि पेट भी खराब हो जाता है। पानी में सोडियम आदि ठोस लवणों की मात्रा 1500 पी पी एम से अधिक हो तो उसे पीने योग्य नहीं माना जाता। आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, हरियाणा, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, तमिलनाडु और पश्चिम बंगाल के अतिरिक्त पाण्डिचेरी, अंडमान और निकोबार द्वीप समूह तथा लक्षद्वीप में यह समस्या पाई गई है।

खारे पानी को मीठा बनाना

वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् के अधीन भावनगर में स्थित केन्द्रीय लवण और समुद्री रसायन अनुसंधान तथा चण्डीगढ़ के केन्द्रीय यांत्रिकी इंजीनियरी अनुसंधान ने पानी का खारापन दूर करने की तकनीक पक्की करके संयत्र बनाये हैं। इस प्रकार के 130 संयंत्र राजस्थान, तमिलनाडु, गुजरात, आन्ध्र प्रदेश, पाण्डिचेरी, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र और हरियाणा में लगाये गये हैं। हमारे देश की ग्रामीण परिस्थितियों के अनुसार इन खारापन-निवारक जल-संयंत्रों में बराबर सुधार किये जा रहे हैं। भावनगर के संस्थान ने सौर ऊर्जा से समुद्र जल का नमक उड़ाकर उसका खारापन दूर करने के संयंत्र भी सफलता से चलाये हैं।

जमीन के अंदर पानी कहां है, कितनी गहराई में है और उसकी गुणवत्ता कैसी है, इन सवालों के जवाब खोजने में भी वैज्ञानिक संस्थाओं की मदद ली जा रही है। हैदराबाद के राष्ट्रीय भू-भौतिकी अनुसंधान (एन जी आर आई) और केन्द्रीय भू-जल बोर्ड (सी जी डब्ल्यू बी) दोनों ने इस दिशा में मिलकर काम किया है। उपग्रहों से प्राप्त पृथ्वी के चित्रों से भी भू-जल के स्रोतों का पता लगाया जा रहा है। 447 जिलों के उपग्रही भू-चित्र बना लिए गये है। इन प्रयासों से लगभग 12 हजार गांवों में भू-जल के स्रोतों

का पता लगा। जहां पानी खोज-खोज के सब हार गये थे ऐसे लगभग 1,200 गांवों में अब हैंडपंप काम कर रहे हैं। राष्ट्रीय भू-भौतिकी अनुसंधान संस्थान आन्ध्र प्रदेश में कुरनूल जिले में 18 गांव, आगरा जिले में 13 गांव और कर्नाटक के गुलबर्गा जिले में 9 गांव, राजस्थान के बाड़मेर जिले में 24 गांव और उड़ीसा के गंजम जिले में 16 गांव ऐसे ही थे। कुल 80 जगह बड़ी कठिन परिस्थितियों में पानी का पता लगाकर ड्रिलिंग करने की सलाह दी गई। यह भी बताया गया कि अमुक गहराई तक मीठा पानी है और उसके नीचे खोदेंगे तो खारा पानी निकलेगा।

हैंडपंप की डिजाइन में भी बराबर सुधार किया जा रहा है। पंप चलाने में ज्यादा जोर न लगाना पड़े, बच्चा भी चला ले, जल्दी खराब न हो, ज्यादा टिकाऊ हो, उसके अंजर पुर्जे तोड़-फोड़ तथा चोरी से बचे रहें, इस उद्देश्य से 50 हैंडपंप बनाये गये। मद्रास के पास देहात में पांच पंप लगाये गये जो कि पिछले 3 सालों से ठीक ठाक चल रहे हैं। अब 75 सुधरे पंप बनाये जा रहे हैं, ताकि अलग अलग इलाकों में जांचे जा सकें। दो पंप चार हजार घंटे तक चलाकर देखे गये कि उनके पुर्जे कहां तक घिसते हैं।

हैंडपंप बनाने और उनकी मरम्मत करने, भू-जल का पता लगाने और पानी की जांच करने के बारे में संबंधित कार्यकताओं, इंजीनियरों, भू-वैज्ञानिकों तथा पेयजल विभागों के अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये गये हैं। पानी की जांच के लिए आठवीं योजना में हर जिले में एक प्रयोगशाला बनाने का प्रस्ताव है। इस तरह की 84 प्रयोगशालाएं स्वीकृत की जा चुकी हैं। 17 चलती फिरती प्रयोगशालाएं भी काम कर रही हैं। 28 स्थिर और 8 चल प्रयोगशालाएं प्रस्तावित हैं।

पानी को पीने योग्य बनाने की तो बहुत सी तकनीकें है लेकिन अपने देश के लिए उपयुक्त तकनीकों का विकास और प्रसार किया जा रहा है। हैजे और अन्य संक्रामक रोगों के जीवाणु मारने के लिए क्लोरीनीकरण किया जाता है। इसके लिए आमतौर पर सोडियम या कैलशियम के हाइपोक्लोराइट इस्तेमाल किये जाते हैं। नागपुर के पर्यावरण संस्थान ने देहाती कुंओं में डालने के लिए सस्ती टिकियां बनाई हैं जो पानी में क्लोरीन घोलकर उसे जीवाणुमुक्त कर देती हैं। पानी में नमक या फिटकरी या लाल दवा (पोटेशियम परमेंगनेट) डालकर भी उसे रोगाणुमुक्त किया जा सकता है। बाकी गंदगी को साफ करने का सस्ता तरीका है पानी छानना।

एक तरीका यह खोजा गया है कि दो घड़ों को एक दूसरे के ऊपर चढ़ाकर रख दें। ऊपर वाले घड़े में पहले कच्चे कोयले डालें और उसके ऊपर स्वच्छ बालू की एक परत बिछा दें। इसके पेंदे से जो पानी नीचे वाले घड़े में टपकेगा वह स्वच्छ और पीने योग्य होगा। तांबे के किसी बर्तन में भरकर धूप में रख दें, तो इससे भी पानी निर्मल हो जाता है। ईंधन मंहगा और दुर्लभ हो रहा है, नहीं तो पानी उबालना भी पानी को हर प्रकार के रोगाणुओं से मुक्त करने का आसान तरीका है। केवल एक मिनट तक पानी उबालना काफी है।

सेंजना का पौधा अभी तक अपनी फलियों के लिए जाना जाता था। इसकी फलियों और पत्तियों में विटामिन ए खूब होता है। दक्षिण भारत में इसकी फलियां व पत्तियां सांभर में जरूर डाली जाती हैं। अब पता चला है कि सेंजना या सहजन के बीज गंदा पानी साफ कर सकते हैं। सेंजना के 30 बीज 40 लीटर पानी साफ कर सकते हैं। इन बीजों में एक घुलनशील प्रोटीन होता है जो गंदे पानी की अशुद्धियों और उससें मौजूद रोगाणुओं को समेटकर थक्का सा जमा देता है। थक्का गंदगी समेत नीचे बैठ जाता है और पानी ऊपर से निथार कर पिया जा सकता है। बीजों को पीसकर इसकी पिट्ठी का लेप मटके के अंदर कर दिया जाये तो डेढ़ मिलीग्राम लेप एक लीटर पानी साफ करने के लिए काफी है। ब्रिटेन में लेस्टर विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक डा0 ज्योफ फोकार्ड ने भी सेंजना के बीजों की गंदा पानी साफ करने की खूबियां पता लगाई हैं। मोरिना ओलीफेरा नामक यह पौधा केवल हिमालय में पाया जाता था। अंग्रेजों ने इसे देखा और इसकी लंबी फलियों के आकार प्रकार के अनुसार इसको ड्रम स्टिक नाम दिया। पूरे भारत में ही नहीं, एशिया और अफ्रीका के अनेक देशों में इसका प्रसार किया। अब यह जल के शुद्धीकरण का बड़ा सस्ता और उपयोगी साधन बन गया है।

प्रधान संपादक, 'खेती' लोकविज्ञान एकक
603 कृषि अनुसंधान भवन
पूसा, नई दिल्ली- 110012

ग्रामीण पेयजल व्यवस्था : स्थिति एवं संभावनाएं

✍ भंवरलाल हर्ष

हवा व पानी जीवन की अनिवार्य वस्तुएं हैं। इनके अभाव में मानव सभ्यता की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इस बात का इतिहास गवाह है कि दुनिया का प्रत्येक देश पहले पहल विभिन्न नदी घाटियों में फला फूला है। अनेक बड़े-बड़े नगर, नदी, झील अथवा तालाब के साये में बसे हुए हैं। लेकिन जल स्रोत असीमित नहीं है। उनकी तादाद सीमित है। दुनिया के क्षेत्रफल के 0.3 प्रतिशत भाग में ही शुद्ध साफ व पीने योग्य जल है। प्रगति की इस अंधी दौड़ में अधिक से अधिक पानी के उपभोग की होड़-सी लगी है। वर्तमान में एक शहरी परिवार एक ग्रामीण परिवार की तुलना में छह गुना अधिक पानी खर्च करता है।

विकसित देशों में शुद्ध पेयजल जैसे तैसे उपलब्ध हो जाता है लेकिन विश्व के नक्शे के वे राष्ट्र, जो अभी विकास के लिए संघर्षरत हैं, उनको शुद्ध जल तो दूर, अशुद्ध जल भी नसीब नहीं होता। इसका परिणाम यह होता है कि इन देशों में लगभग 80 प्रतिशत बीमारियां अशुद्ध जल और गंदगी के कारण होती हैं।

आज भी दुनिया में डेढ़ अरब लोग ऐसे हैं जिनके लिए शुद्ध पेयजल प्राप्त करना एक सपना है। इस कारण प्रतिदिन हजारों व्यक्ति अतिसार जैसे रोगों का शिकार होते हैं।

यदि इसे हम भारत के संदर्भ में देखें तो यह समस्या अब इतनी गंभीर तो नहीं जितनी दो दशक पहले थी। लेकिन बढ़ती आबादी और बढ़ते औद्योगीकरण ने इस स्थिति को बिगाड़ कर रख दिया है। हाल ही में जारी केन्द्रीय जल प्रदूषण निवारण और नियंत्रण मंडल, की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार देश में 142 प्रथम श्रेणी के नगरों से प्रतिदिन 70 लाख लीटर से अधिक सीवरेज निकलता है। शहर ही क्यों हमारे गांव भी प्रदूषण के मामले में पीछे नहीं है। अंतर केवल इतना है कि वहां प्रदूषण के कारण अलग हैं। गांवों में पेयजल की कमी, मल प्रवाह, सफाई और चिकित्सा व्यवस्था के अभाव से प्रदूषण फैलता है। हमारे देश की अधिकांश ग्रामीण जनता खुले कुओं, पोखरों, तालाबों, झीलों या नदी नालों का पानी पीती है, जो प्रायः दूषित होता है।

समस्याग्रस्त क्षेत्र की पहचान

पेयजल समस्याग्रस्त क्षेत्र उसे माना जाता है जहां भूमिगत जल का स्तर पारंपरिक हैण्ड पम्पों द्वारा सींचे जा सकने वाले स्तर लगभग 15 मीटर नीचे हैं और मोटर से चलने वाले पम्प सेटों के लिए बिजली का ग्रिड उपलब्ध नहीं है अथवा ऐसे गांव जहां 1.6 किलोमीटर के अंदर पेयजल के सुनिश्चित स्रोत नहीं है।

उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त ऐसे गांव भी पेयजल की समस्या से ग्रस्त माने जाते हैं जहां उपलब्ध जल में लवण, लौह, फ्लोराइड अथवा विषैले तत्व अधिक मात्रा में उपस्थित हैं अथवा, जहां हैजा एवं जल से उत्पन्न अन्य बीमारियां महामारी के रूप में फैलती रहती है।

पेयजल समस्या के समाधान हेतु प्रयास

इस विकट समस्या के समाधान के लिए राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय दोनों स्तर पर भरसक प्रयास किए हैं। संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 1981 से 1990 को 'अन्तर्राष्ट्रीय पेयजल आपूर्ति व स्वच्छता दशक' घोषित किया। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम, विश्व स्वास्थ्य कार्यक्रम, यूनीसेफ और विश्व बैंक ने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पेयजल आपूर्ति व स्वच्छता दशक में नेतृत्व की भूमिका निभाई थी तथा लगभग 40 देशों में पेयजल कार्यक्रम चलाया गया।

भारत में भी समय-समय पर इस समस्या के समाधान के लिए भरसक प्रयास किए गये हैं। सन् 1901 में पहला सिंचाई आयोग गठित किया गया। बंगाल के 1943 के अकाल के बाद सन् 1945 में केन्द्रीय जल मार्ग, सिंचाई और नौवहन आयोग बनाया गया जो बाद में केन्द्रीय जल आयोग और ऊर्जा आयोग में बदल दिया गया। वर्तमान में इसे केन्द्रीय जल आयोग कहा जाता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में स्वच्छ पेयजल की आपूर्ति का प्रबंध राज्यों का दायित्व है। सन् 1951 में प्रथम पंचवर्षीय योजना से ही राज्यों के बजट में पेयजल पर ध्यान दिया गया। सन् 1952 में अधिक अन्न उपजाओ जांच समिति की सिफारिश पर लघु सिंचाई, योजनाओं को चलाने और मौजूदा कुओं तथा जलाशयों को ठीक

करने पर बल दिया गया। सन् 1954 में राष्ट्रीय पेयजल तथा स्वच्छता कार्यक्रम आरंभ किया गया परन्तु देखा गया कि केवल कुछ ही राज्यों में पेयजल कार्यक्रम का लाभ पहुंचा है। अत: केन्द्रीय सरकार ने अनुरोध किया कि प्रत्येक राज्य में पेयजल समस्याग्रस्त गांवों का पता लगाएं तथा समस्या का तत्काल हल खोजें। इसके लिए पंचवर्षीय योजना में विशेष जांच पड़ताल प्रभाग स्थापित करने के लिए राज्यों की सहायता की गयी।

सन् 1972-73 में त्वरित ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रम आरंभ किया गया तो पांचवी योजना में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम को शुरू करते ही वापस ले लिया गया। इस कार्यक्रम को 1977-78 में पुन: चालू किया गया। 1977 में संयुक्त राष्ट्र जल सम्मेलन में पहली बार पेयजल तथा स्वच्छता के विषय को अन्य जल मुद्दों से अलग किया गया। छठी योजना के शुरू तक लगभग 1.92 लाख गांवों में पेयजल उपलब्ध कराए जाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया।

ग्रामीण जनता को पेयजल उपलब्ध कराए जाने के लिए 1986 में राष्ट्रीय पेयजल मिशन शुरू किया गया। सातवीं योजना में त्वरित ग्रामीण जल आपूति कार्यक्रम के लिए 1201.22 करोड़ रुपये, राष्ट्रीय पेयजल मिशन के अन्तर्गत 150 करोड़ रुपये व राज्य क्षेत्र के न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत 2253.25 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया। इन तीनों कार्यक्रमों का उद्देश्य 1990 तक सभी गांवों में पीने के पानी की व्यवस्था का अन्तर्राष्ट्रीय मानकों के तहत लक्ष्य पूरा करना था। आठवीं योजना में शेष सभी एक लाख 62 हजार गांवों में पेयजल आपूर्ति का लक्ष्य था, किन्तु लगभग 1 लाख 54 हजार समस्याग्रस्त गांव ही इस समस्या से मुक्त हो पाए।

सातवीं योजना में देश में दुर्गम भागों में पेयजल उपलब्ध कराने हेतु विभिन्न क्षेत्रों में 55 मिनी मिशन परियोजनाएं प्रारंभ की गयीं जिससे समन्वित वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिकी तरीकों से लाभ उठाया जा सके।

समस्या हेतु सुझाव

भारत के विभिन्न ग्रामीण क्षेत्रों में इस विश्वव्यापी समस्या को हल करने के लिए यदि निम्नलिखित सुझावों पर अमल किया जाता है तो काफी हद तक इस समस्या से निजात पायी जा सकती है:

1. लगभग 30 से 35 प्रतिशत तक पानी टूटे फूटे और पुराने नलों से रिस रिसकर और बहकर व्यर्थ चला जाता है। कुशल प्रबंध द्वारा इस हानि को रोका जा सकता है।

2. मुख्य रूप से महिलाओं का ही यह दायित्व होता है कि वह परिवार के पेयजल की स्वच्छता सुनिश्चित करें। अत: महिलाओं को जल आपूर्ति और स्वच्छता के प्रबंध में सर्वप्रथम प्राथमिकता देनी चाहिए।

3. पेयजल की आपूर्ति एवं स्वच्छता के तकनीकी ज्ञान को जन-जन तक पहुंचाना चाहिए।

4. कुएं, नल व हैण्डपम्प की सहायता से स्वच्छ पानी उपभोक्ता तक पहुंचाना आवश्यक है। पानी लाने, भंडारण करने और उपभोग करने की प्रक्रिया की सही जानकारी प्रत्येक उपभोक्ता को दी जानी चाहिए।

5. नगरों और गांवों में जल आपूर्ति के साथ-साथ मल प्रवाह की भी पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए।

6. हैण्डपम्पों की उचित देखभाल के लिए तकनीकी जानकारी का विस्तार किया जाना आवश्यक है।

7. जल का उपयोग सामाजिक ढांचे से जुड़ा है इसलिए तकनीकी और सामाजिक पक्षों के बीच तालमेल होना आवश्यक है।

8. वनों की अंधाधुंध कटाई, जलचक्र के टूटने, भूमिगत जल के समाप्त होने तथा नदियों की तली में कूड़ा जमा होने के कारणों से पेयजल का अभाव बढ़ता जा रहा है। अत: अधिक मात्रा में वनरोपण किया जाना चाहिए, जिससे ऋतुचक्र समयानुकूल चलता रहे।

इस प्रकार जल के लिए उचित संरक्षण, कुशल प्रबंध व किफायती उपभोग से ही हम पेयजल की इस बढ़ती समस्या का हल निकाल पाऐंगे। अन्यथा वह दिन दूर नहीं कि जिस तरह हम खाद्य तेल खरीद रहे हैं उसी तरह पानी भी खरीदना पड़ सकता है। इसके लिए आवश्यकता इस बात की है कि वैज्ञानिक विधि पर आधारित बहुपक्षीय रणनीति विकसित करने में आम व्यक्तियों के प्रयत्नों को बढ़ावा दिया जाए और इस कार्य में संयुक्त राष्ट्र एजेंसियों,सरकार और स्वैच्छिक संस्थानों का सहयोग प्राप्त किया जाये।

9/196, साले की होली
बीकानेर (राजस्थान)

ग्रामीण पेयजल - लक्ष्य और उपलब्धियां

✍ सुभाष चन्द्र सत्य

ल ही जीवन है। सृष्टि के अस्तित्व के लिए आवश्यक पांच पंचभूतों में से पानी भी एक है। यूं तो समूचे जीव जगत के लिए पानी अनिवार्य है, परन्तु मुख्य रूप से इसका उपयोग पीने के साथ-साथ जीवन को सुखी व आरामदेह बनाने के अन्य अनेक कार्यों में भी होता है। अत: मानव जीवन में पानी की महत्ता बहुत अधिक है।

देश के निकट तीन ओर समुद्र, छोटी बड़ी असंख्य नदियों का जाल तथा भूमि जल का अथाह भंडार होने के बावजूद बहुत बड़ी संख्या में देशवासी विशेषकर रेगिस्तानी और दुर्गम पर्वतीय क्षेत्रों तथा दूर दराज के गांवों में रहने वाली आबादी को स्वच्छ पेय जल उपलब्ध नहीं है. हमारे देश में जल संसाधनों तथा पीने के लिए उपलब्ध पानी की मात्रा में भारी अंतर है। इसका एक कारण तो यह है कि हाल तक हमारी कोई राष्ट्रीय जल नीति नहीं थी जिस कारण पानी की आवश्यकताओं और उपलब्ध संसाधनों का सम्यक अध्ययन करके उनमें तालमेल लाने का काम नहीं किया जा सकता। अनेक नदियों का पानी बेकार चला जाता है और कई नदियां केवल बरसाती नदियां हैं, जिनमें वर्ष के तीन चार महीने ही पानी रहता है। जल संबंधी संकट गर्मियों में अधिक होता है। गर्मियों में भूमि जल का स्तर नीचे चला जाता है। इसके अलावा वर्षा की अनिश्चित स्थिति भी पानी के अभाव के लिए जिम्मेदार है। देश के कुछ भाग वर्षा की बहुतायत के कारण बाढ़ में डूबे होते है। उसी समय कुछ अन्य भाग कम वर्षा अथवा अवृष्टि के कारण सूखे की चपेट में होते हैं। उदाहरण के लिए पश्चिमी तट, असम, पश्चिम बंगाल में 80 इंच वर्षा होती है जबकि राजस्थान के रेगिस्तानी क्षेत्रों, जम्मू कश्मीर में और लद्दाख में नाममात्र की वर्षा होती है। यही नहीं, वर्ष में अलग-अलग समय में भी वर्षा की मात्रा असमान है। मिसाल के तौर पर जून से सितम्बर तक 73.7 प्रतिशत, अक्तूबर से दिसम्बर तक 13.3 प्रतिशत, मार्च से मई तक 10.4 प्रतिशत और जनवरी से फरवरी के बीच केवल 2.6 प्रतिशत बारिश होती है। हमारे देश का मुख्य मानसून दक्षिण पश्चिमी मानसून है जो जून के आसपास आता है और तब तक पानी के सभी स्रोत सूख चुके होते हैं क्योंकि इन महीनों में भारी गर्मी पड़ती है। यही कारण है कि गर्मियों में पानी की कमी विशेष रूप से महसूस की जाती है।

पानी के इस अभाव की सबसे अधिक कचोट गांवों को होती है। देश के लगभग आधे गांवों में पेय जल का केवल एक ही स्रोत है। आज भी अनेक गांव ऐसे हैं, जहां मनुष्य पोखर के पानी का इस्तेमाल करते हैं, क्योंकि इन गांवों में मनुष्यों के लिए पेय जल की अन्य कोई व्यवस्था नहीं है। 1980 में किए गए अध्ययन के अनुसार 2 लाख 31 हजार गांवों में पेय जल का कोई विश्वसनीय स्रोत नहीं था। इन्हें समस्याग्रस्त गांव माना जाता है। सातवीं योजना में लगभग एक लाख 54 हजार गांवों में पेय जल उपलब्ध कराया गया है। इसके बाद तीन हजार गांवों में 1990-91 में पेयजल का प्रबंध किया गया। ग्रामीण विकास विभाग की रिपोर्ट के अनुसार 2509 गांवों में 1991-92 के दौरान तथा 2824 गांवों में 1992-93 के दौरान पीने के पानी का प्रबंध करने का लक्ष्य तय किया गया।

जनसंख्या की दृष्टि से पेयजल की उपलब्धता के मामले में 1981 की जनगणना पर आधारित आंकड़ों के अनुसार मार्च 1991 के अंत तक की स्थिति इस प्रकार थी :-

श्रेणी	प्रतिशत
सामान्य	97.40
अनुसूचित जाति	63.31
अनुसूचित जन जाति	74.81

इस प्रकार देश में जो आबादी पेयजल के अभाव में कष्ट झेल रही है इनमें से 35 प्रतिशत संख्या अनुसूचित जातियों तथा 25 प्रतिशत जनजातियों के लोगों की है, जो दूर दराज के क्षेत्रों तथा दुर्गम इलाकों में बसे होने के कारण पेयजल सुविधाओं से वंचित हैं। इन क्षेत्रों के संबंध में अभी तक विस्तृत अध्ययन नहीं किया जा सका है, अत: सही आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं।

देश में पेय जल की समस्या को हल करने की दिशा में सरकार योजनाबद्ध विकास की शुरूआत के समय से ही प्रयास करती रही है, किन्तु 1980 के दशक में, जिसे अंतराष्ट्रीय पेयजल दशक के रूप में घोषित किया गया था, इस संबंध में अनेक उल्लेखनीय उपाय किये गए। सबसे महत्वपूर्ण काम यह हुआ कि 1987 में राष्ट्रीय जल नीति की घोषणा की गयी। इस नीति में समूचे देश में जल स्रोतों की स्थिति तथा बढ़ती हुई आबादी की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए कुछ लक्ष्य भी निर्धारित किए गए। राष्ट्रीय जल नीति के मुद्दों को लागू करने के लिए केन्द्र तथा राज्य सरकारें आवश्यक योजनाएं चला रही हैं। अनेक राज्यों में पेयजल की मास्टर योजनाएं तैयार की गई हैं जिनमें पीने के पानी की व्यवस्था, बाढ़ नियंत्रण तथा ऊर्जा उत्पादन जैसे सभी पहलुओं पर समन्वित कार्रवाई की जाती है।

पेयजल की व्यवस्था के प्रयासों को गति देने के उद्देश्य से 1986 में सरकार ने राष्ट्रीय पेय जल मिशन की स्थापना की। इस मिशन को मुख्य रूप से गांवों में पेयजल की व्यवस्था का दायित्व सौंपा गया। सरकार ने कुछ बुनियादी क्षेत्रों में विकास में तेज़ी लाने के लिए पांच विशेष टेक्नोलॉजी मिशनों की स्थापना की थी। पेयजल मिशन भी उनमें से एक है। 1991-92 में इस मिशन का नाम बदल कर राजीव गांधी राष्ट्रीय पेयजल मिशन कर दिया गया। साथ ही ग्रामीण पेयजल तथा ग्रामीण जल मल विभागों को ग्रामीण विकास मंत्रालय को स्थानांतरित कर दिया गया ताकि इन पर अधिक मुस्तैदी और गहराई से ध्यान दिया जा सके। जिन गांवों में पानी का एक भी स्रोत नहीं है, वहां पेयजल का प्रबंध करने के लिए मिशन को 1991-92 में 190 करोड़ रुपये की अतिरिक्त राशि उपलब्ध कराई गई। 1992-93 में राजीव गांधी राष्ट्रीय पेयजल मिशन के लिए 4 अरब 60 करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है।

सन् 1993-94 में केन्द्रीय बजट में इसके प्रावधान में और वृद्धि की गयी है। 1992-93 के बजट में 460 करोड़ रुपये के प्रावधान को बढ़ा कर 1993-94 में 740 करोड़ रुपये कर दिया गया है। इसके अलावा ग्रामीण विकास विभाग ने योजना खर्च में 62 प्रतिशत की वृद्धि की है जिससे कुओं और तालाबों आदि की खुदाई की रोजगारोन्मुखी परियोजनाओं के क्रियान्वयन से जल आपूर्ति में वृद्धि होगी। योजना आयोग ने 1991-92 के मूल्यों के आधार पर आठवीं योजना में पेयजल आपूर्ति के लिए 11,400 करोड़ रुपये के प्रावधान का प्रस्ताव किया जिससे 6180 करोड़ रुपये केन्द्रीय क्षेत्र में और 5200 करोड़ रुपये राज्य क्षेत्र में है।

गांवों में पेयजल आपूर्ति के लिए कुछ बुनियादी मानदंड तय किये गये हैं जिनके पूरा होने पर ही यह माना जाता है कि कोई गांव विशेष अब पेयजल की दृष्टि से समस्याग्रस्त गांव नहीं रहा। उदाहरण के लिए गांव में मानव उपयोग हेतु प्रति व्यक्ति 40 लीटर स्वच्छ पेयजल प्रतिदिन उपलब्ध होना चाहिए। रेगिस्तानी जिलों में अतिरिक्त 30 लीटर प्रति दिन पानी मवेशियों के लिए उपलब्ध होना चाहिए। 250 व्यक्तियों के पीछे एक हैंडपम्प की व्यवस्था होनी चाहिए। 1.6 किलोमीटर के दायरे में जल का स्रोत उपलब्ध हो। इस स्रोत से प्राप्त पानी पीने के लिए सुरक्षित तथा रोगाणुरहित हो।

राष्ट्रीय पेयजल मिशन के अलावा 55 जिलों में मिनी मिशन तथा अनेक स्थानों पर सब मिशन बनाये गये हैं जो गांवों में पेयजल आपूर्ति के प्रयासों को आगे बढ़ा रहे हैं। इन प्रयासों के अंतर्गत पानी के स्रोत की व्यवस्था के साथ-साथ और भी अनेक कार्य किये जाते हैं। पानी की गुणवत्ता पर बराबर नजर रखी जाती है तथा पानी प्राप्त करने के परम्परागत साधनों को सुधारने के सुझाव दिये जाते हैं। पानी को साफ करने के बेहतर तरीके लोगों को बताये जाते हैं। पानी निकालने के काम आने वाले औजारों में सुधार लाने के भी प्रयास किये जाते हैं। इन सभी कार्यों में पंचायतों तथा स्वयंसेवी संगठनों का भी सहयोग लिया जाता है।

पानी की गुणवत्ता तथा स्वच्छता पर नजर रखने के लिए आठवीं योजना अवधि में प्रत्येक जिले में कम से कम एक प्रयोगशाला स्थापित करने की कार्यनीति तैयार की गयी है। अब तक 84 प्रयोगशालाएं बनाई गई हैं, जो काम कर रही हैं। इसके अलावा 17 चलती फिरती प्रयोगशालाएं भी पानी की जांच करती हैं। 28 नई प्रयोगशालाएं खोलने तथा 8 चलती फिरती प्रयोगशालाएं शुरू करने के प्रस्ताव पर विचार किया जा रहा है। पानी में खारेपन, फ्लोरोसिस, तथा अधिक लोहतत्व जैसे हानिकारक तत्वों का पता लगाने और उन पर नियंत्रण पाने के भी उपाय किये जाते हैं।

गांवों में पेयजल की आपूर्ति मुख्य रूप से भूमि जल पर आधारित है। इसलिए पानी की खोज के प्रयासों को कारगर बनाना आवश्यक है। राष्ट्रीय पेयजल मिशन पानी की खोज वैज्ञानिक ढ़ग से करने के उपाय कर रहा है। इससे उसके प्रयास व्यर्थ नहीं जाएंगे, और जल आपूर्ति पर लागत भी कम आएगी। ये उपाय राष्ट्रीय ग्रमीण रोजगार कार्यक्रम तथा राष्ट्रीय भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम के अंतर्गत भी लिये जा सके हैं। जल स्रोत की खोज तथा व्यवस्था करते हुए स्थानीय लोगों की राय और

आवश्यकताओं पर भी विचार किया जाना चाहिए। इस काम में स्थानीय लोगों, संस्थाओं तथा जानकार व्यक्तियों का सहयोग बहुत लाभकारी हो सकता है। उदाहरण के लिए मध्य प्रदेश में रायसेन जिले में एक व्यक्ति अजीब तरीके से भूमि के नीचे पानी होने की पहचान कर लेता है। वह अक्सर महुआ या मेंहदी के पेड़ से लकड़ी तोड़कर जमीन पर झुकाता है और जहां लकड़ी में कंपन होता है। वहां पानी के तेज प्रवाह होने का अनुमान लगाया जाता है। उसका यह प्रयोग कई स्थानों पर सही सिद्ध हुआ है।

हमारे समाज में पानी लाने का दायित्व महिलाएं संभालती हैं, इसलिए पेयजल की कमी के कारण मुख्य रूप से उन्हीं को तकलीफें झेलनी पड़ती हैं, परन्तु देखने में यह आया है कि पानी का स्रोत चुनते समय उनकी कोई सलाह नहीं ली जाती। इस कारण कई बार असुविधाजनक स्थानों पर नल लगाए जाते हैं।

जाहिर है कि पेयजल आपूर्ति के विशाल लक्ष्य को केवल सरकारी उपायों से पूरा करना संभव नहीं है। सरकार ने जल आपूर्ति के लिए विभिन्न संगठनों की स्थापना के अलावा योजना व्यय में भी बराबर वृद्धि की है। किन्तु अब भी अनेक गांवों में लोग पेयजल की सुविधाओं से वंचित हैं। इसके लिए स्वयंसेवी संगठनों का सहयोग लेना आवश्यक है। गैर सरकारी संगठनों के पास उपलब्ध तकनीकी विशेषज्ञता और जन-शक्ति का पता लगाकर इसका इस्तेमाल किया जाना चाहिए। इस दिशा में महाराष्ट्र की स्वयंसेवी संस्था -"पानी पंचायत" ने अनुकरणीय मिसाल पेश की है। वह कम मूल्य पर पानी उपलब्ध कराने की दिशा में बहुत अच्छा काम कर रही है।

स्वयंसेवी संस्थाओं के योगदान से एक तो जल आपूर्ति के प्रयासों पर सरकारी खर्च में कमी आयेगी और दूसरे इसमें जनता की भागीदारी बढ़ेगी। आठवीं योजना की कार्यनीति में पेयजल आपूर्ति के कार्यक्रमों में निजी क्षेत्र को पूंजीनिवेश करने के लिए प्रोत्साहित करने के उपाय भी शामिल हैं।

पेयजल की समस्या का एक दूसरा पहलू है जल का संरक्षण। जितना आवश्यक पेयजल के स्रोतों का पता लगाना है उतना ही जरूरी पानी की बर्बादी को रोकना। इस काम में भी स्वयंसेवी संस्थाएं बहुत उपयोगी भूमिका निभा सकती हैं। क्योंकि आम लोगों में चेतना लाए बिना यह कार्य संभव नहीं है। राष्ट्रीय जलनीति में भी इस बात पर जोर दिया गया है कि पानी का इस्तेमाल सावधानी तथा सबसे बढ़िया तरीकों से किया जाये और जनता में पानी के संरक्षण के बारे में जागृति लाई जाए।

इस प्रकार गांवों में स्वच्छ एवं सुरक्षित पेयजल उपलब्ध कराने की बुनियादी समस्या सरकार तथा स्वयंसेवी संस्थाओं के मिले-जुले प्रयासों से ही हल हो सकती है। हर साल गर्मियों के आने पर हाथ पांव मारने से बेहतर है दीर्घकालीन उपाय करके राष्ट्रीय स्तर पर इस संकट से उबरने के उपाय किये जायें। इसके लिए समुद्री पानी का खारापन दूर करके, उसे पीने योग्य बनाने, वर्षा के पानी को जमा करने तथा उसे स्वच्छ बनाने और नदियों, झीलों, झरनों, जैसे संसाधनों से प्राप्त पानी को परिष्कृत करने के उपाय शामिल हैं। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम तथा ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम के क्रियान्वयन के माध्यम से कुओं, तालाबों आदि की खुदाई के काम में गति लाकर भी पेयजल का संकट दूर किया जा सकता है।

यह सही है कि समस्याग्रस्त गांवों में पानी का कम से कम एक स्रोत उपलब्ध कराने की दिशा में प्रगति अभी धीमी है। किन्तु अब तक हासिल की गयी उपलब्धियों को देखकर यह विश्वास किया जा सकता है कि आठवीं योजना अवधि में गांवों में पेयजल की समस्या की गंभीरता में काफी कमी आ जायेगी।

1370, सेक्टर 12,
आर.के.पुरम,
नई दिल्ली-22

हम कहां तक पहुंचे हैं और कहां पहुंचना है?

✍ शशि बाला

स्वच्छ पेयजल मानव जीवन का आधार है और यह सम्पूर्ण जीवन का मुख्य तत्व भी है। स्वच्छ जल स्वच्छता, सुन्दरता और पवित्रता को प्रतिबिम्बित करता है। रोग और अस्वच्छ पानी का सीधा नाता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा किए गए सर्वेक्षण से यह बात सामने आयी थी कि 80 प्रतिशत रोगों का कारण दूषित जल है। दूषित जल के परिणामस्वरूप हैजा, मलेरिया, टाइफाइड और आन्त्रशोध नामक बीमारियां फैलती हैं।

वनों की कटाई, जल चक्र के टूटने, भूतल से जल के समाप्त होने, भूगत जल के स्तर में गिरावट और नदियों की तली में गाध जमा होने से पानी की उपलब्धता में कमी आती जा रही है। भूमि, पानी और वन जैसे प्राकृतिक साधन एक दूसरे के पूरक हैं। लेकिन हम भूमि का इस्तेमाल करते समय वन तथा जल संसाधनों का आपस में तालमेल नहीं रखते हैं। इसके परिणामस्वरूप पानी की उपलब्धता में कम हो जाती है और उसमें प्रदूषण पनपता है।

भारत में पेयजल की कमी, स्वच्छता सुविधाओं का अभाव और स्वास्थ्य सुविधाओं के बारे में अनभिज्ञता बीमारी का कारण हैं। इससे सबसे अधिक बच्चे प्रभावित होते हैं। व्यस्कों में भी पानी की कमी तथा गन्दगी के वातावरण के कारण बीमारी फैलती है जिससे प्रतिवर्ष लगभग 7 करोड़ श्रमदिन के रोजगार का नुकसान होता है। इससे देश में उत्पादन तो कम होता ही है साथ ही लोगों के जीविका अर्जन पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। भारत में पीने के पानी के लिए परम्परा से चले आ रहे खुले कुंए पेयजल का मुख्य स्रोत हैं। दूसरा स्थान हैंडपम्पों का है और इसके बाद स्थान और स्थिति के अनुसार लोग तालाबों, झीलों, नहरों और नदियों जैसे साधनों का इस्तेमाल करते हैं।

पेयजल और महिलाएं

भारतीय परिवारों में पानी प्राप्त करने का काम आमतौर पर महिलाओं को करना होता है। सात सदस्यों के एक साधारण परिवार में प्रतिदिन लगभग 200 लीटर पानी की जरूरत होती है। महिलाओं को ही यह निर्णय लेना होता है कि किस स्रोत से पानी लाया जाये, उसका कैसे इस्तेमाल किया जाए और उसे प्रदूषण से कैसे बचाया जाये। परन्तु समाज में इस बारे में उनकी राय जानने में कोई खास प्रगति नहीं हुई है। इसका कारण यह है कि इन्हें पानी का इस्तेमाल करने वाली तो माना जाता है परन्तु पर्यावरण को बदलने में उनकी क्षमता की अनदेखी की जाती है।

पेयजल का रख-रखाव

घर की चारदीवारी में पानी आ जाने के बाद इस बात का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है कि पानी को पीने योग्य बनाए रखने के लिए उचित विधियों का इस्तेमाल किया जाये। चार में से लगभग तीन परिवार ऐसे है जहां जिस बर्तन में पानी लाया जाता है उसी में रखा जाता है। हमारे कई राज्यों जैसे गुजरात, मध्य प्रदेश और राजस्थान में पानी को प्रायः जमीन की सतह से ऊपर बनाए गए चबूतरे अथवा लकड़ी के स्टैंड पर रखा जाता है, जहां उसमें बच्चे हाथ न डाल सकें। लेकिन दूसरे राज्यों में आमतौर पर पानी को जमीन पर ही रखा जाता है। जिन राज्यों में पानी में प्रदूषण का प्रचार-प्रसार हो गया है, वहां पानी को पीने से पहले उबालने की प्रथा की शुरूआत तो हुई है किन्तु अभी केवल 4 प्रतिशत लोग ही ऐसा कर रहे है। यह प्रथा मणिपुर राज्य में काफी प्रचलित है। वहां तो लगभग 25 प्रतिशत परिवारों में पानी में क्लोरिन का इस्तेमाल भी होने लगा है।

देश में लगभग 65 प्रतिशत परिवार पीने के पानी को बरतन से लेने के लिए हैण्डल वाली डोलची का इस्तेमाल नहीं करते जिससे उन्हें पानी में हाथ डुबोने पड़ते हैं। इस प्रकार देखा जाता है कि पानी को जल स्रोत से निकालने, उसे घर तक लाने, घर में रखने और उसे निकालने के लिए कई बार हाथ पानी को लगते हैं जिससे पेयजल दूषित हो जाता है।

स्वच्छ पेयजल की लोकप्रियता परिभाषा के अनुसार पानी देखने में साफ और स्वाद में मीठा होना चाहिए। इसके विपरीत दूषित पानी देखने में मैला, मटियाले रंग में, स्वाद में खारा और गंध वाला होता है। लोगों को अस्वच्छ पानी से स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों के बारे में जानकारी नहीं होती है। हालांकि इनमें से अधिकांश को इतना अवश्य पता होता है कि उनकी बीमारी का कारण गंदा पानी ही है।

विगत चार दशकों में किए गए प्रयास

स्वतन्त्रता के बाद से ही पीने के पानी की व्यवस्था के प्रयास शुरू हो गए थे। सामाजिक कल्याण क्षेत्र में एक राष्ट्रीय पेयजल तथा स्वच्छता कार्यक्रम की शुरूआत 1954 में की गई थी। राज्यों ने धीरे-धीरे जन स्वास्थ्य इंजीनियरिंग विभाग बनाए ताकि पेय जल सप्लाई और स्वच्छता की समस्याओं को हल किया जा सके: इन प्रयासों के बावजूद साठ के दशक के मध्य में यह पाया गया कि ग्रामीण जल सप्लाई की योजनाएं आसान पहुंच वाले गांवों में ही कार्यान्वित की जा रहीं थीं और इस तरह कठिन समस्या वाले ग्रामीण क्षेत्रों की अवहेलना हो रही थी। इसलिए भारत सरकार ने राज्यों से अनुरोध किया कि वे ऐसे समस्याग्रस्त गांवों का पता लगाएं ताकि समस्याग्रस्त गांवों की पेयजल समस्याओं को हल करने के लिए प्रयास किए जा सकें। भारत सरकार ने समस्याग्रस्त गांवों का पता लगाने के लिए चौथी पंचवर्षीय योजना में विशेष जांच-पड़ताल प्रभाग स्थापित करने के लिए राज्यों की मदद की।

समस्या के स्वरूप को देखते हुए और समस्याग्रस्त गांवों को पेयजल सप्लाई के तहत कवर करने के कार्य में तेज़ी लाने के लिए केन्द्र सरकार ने राज्यों/केन्द्र शासित क्षेत्रों की ऐसे गांवों में योजनाओं के कार्यान्वयन हेतु शत-प्रतिशत अनुदान सहायता देकर मदद करने हेतु 1972-73 में त्वरित ग्रामीण जल सप्लाई कार्यक्रम शुरू किया। यह कार्यक्रम 1973-74 में जारी रहा। उसके बाद यह कार्यक्रम बन्द कर दिया गया। लेकिन पांचवीं पंचवर्षीय योजना में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम को शुरू करते ही इस कार्यक्रम को 1977-78 में पुनः चालू किया गया क्योंकि समस्याग्रस्त गांवों में स्वच्छ पेयजल सप्लाई की प्रगति प्रत्याशा के अनुरूप नहीं थी।

वर्ष 1977 में संयुक्त राष्ट्र जल सम्मेलन ने पहली बार पेय जल तथा स्वच्छता के विषय को जल के अन्य मुद्दों से अलग किया। यह सुझाव दिया गया कि शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों को 1990 तक जल मुहैया कराने के लिए जल की क्वालिटी तथा मात्रा के वास्तविक मानकों की सम्मेलन में सिफारिश की गई थी कि प्रत्येक देश जल की अत्यधिक आवश्यकता वाली जनसंख्या को प्राथमिकता देते हुए जल सप्लाई तथा स्वच्छता हेतु राष्ट्रीय योजनाएं तथा कार्यक्रम बनाए। भारत ने भी 1991 तक लक्ष्यों को प्राप्त करने के प्रस्ताव पर हस्ताक्षर किए। तदनुसार 1 अप्रैल, 1981 को भारत में जल दशक कार्यक्रम की शुरूआत की गई ताकि 31 मार्च, 1991 तक निर्धारित जनसंख्या को जल उपलब्ध कराने के वास्तविक लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके। वास्तविक मानकों के साथ 'दशक नीति' को अपनाने के कार्यक्रम शुरू किये जाएं।

छठी पंचवर्षीय योजना के शुरू तक लगभग 94,000 समस्याग्रस्त गांवों को कवर करने और राज्यों तथा केन्द्र शासित क्षेत्रों द्वारा समस्याग्रस्त क्षेत्रों का पता लगाने के लिए दुबारा से किए गए सर्वेक्षण के परिणामस्वरूप पहली अप्रैल 1980 को लगभग 2.31 लाख समस्याग्रस्त गांव पेयजल सप्लाई की सुविधाओं से वंचित रह गए थे। इनमें से 1.92 लाख समस्याग्रस्त गांवों को छठी पंचवर्षीय योजना में यह सुविधा उपलब्ध करा दी गई और 0.39 लाख गांव सातवीं पंचवर्षीय योजना में बच गए थे। 1985 में किए गए नए सर्वेक्षण के जरिए समस्याग्रस्त गांवों का फिर से चयन किया गया और इसके परिणामस्वरूप पहली अप्रैल 1985 को छठी पंचवर्षीय योजना के शेष बचे गांवों को शामिल करके कुल 1.62 लाख समस्याग्रस्त गांव रह गए थे जिन्हें सातवीं पंचवर्षीय योजना में यह सुविधा दी जानी थी।

ग्रामीण जल सप्लाई तथा ग्रामीण स्वच्छता कार्यक्रम का विषय अगस्त, 1985 में शहरी विकास मंत्रालय से ग्रामीण विकास मंत्रालय में इस उद्देश्य से हस्तांतरित हुआ कि कार्यक्रमों का तेजी से कार्यान्वयन हो सके और उन्हें ग्रामीण विकास के अन्य के कार्यक्रमों से समन्वित किया जा सके। 1986 में पांच सोसाइटी मिशनों में से एक मिशन के रूप में राष्ट्रीय पेयजल मिशन शुरू किया गया था। मिशन का नाम बदलकर अब राजीव गांधी राष्ट्रीय पेय जल मिशन कर दिया गया है। ग्रामीण जनसंख्या को स्वच्छ पेयजल उपलब्ध कराने के लिए भारत सरकार मिशन की गतिविधियों तथा त्वरित ग्रामीण जल सप्लाई कार्यक्रम के जरिए उच्च प्राथमिकता देती रही है।

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम और भारत सरकार ने सितम्बर, 1990 में दिल्ली में स्वच्छ जल (2000) विषय पर एक विश्व सम्मेलन का आयोजन किया। इसके बाद नई दिल्ली घोषणा को नवम्बर, 90 में संयुक्त राष्ट्र की महासभा में स्वीकार किया गया।

1990 के दशक के लिए घोषणा पत्र में अपनाए गए मार्गदर्शी सिद्धान्त ये हैं :-

जल संसाधनों तथा तरल ठोस कूड़े करकट के लिए समन्वित प्रबन्ध करके पर्यावरण का संरक्षण और स्वास्थ्य की सुरक्षा के उपाय करना।

समन्वित नीति, जिसमें प्रक्रिया, स्वभाव और बर्ताव में परिवर्तन लाना शामिल है, को प्रोत्साहित करके संस्थागत सुधार लाना और क्षेत्रीय संस्थाओं में कभी स्तरों पर महिलाओं की पूर्ण भागीदारी सुनिश्चित करना।

जल तथा स्वच्छता कार्यक्रमों का कार्यान्वियन और उन्हें बनाए रखने में स्थानीय संस्थाओं को सुदृढ़ बनाने के साथ-साथ सेवाओं का सामुदायिक प्रबन्ध करना।

विद्यमान परिसम्पत्तियों को बेहतर प्रबन्ध प्रणालियों और बड़े पैमाने पर सही प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल करके ठोस वित्तीय तरीके अपनाना।

इन सिद्धान्तों को कार्यरूप देने के लिए केन्द्र सरकार के स्तर पर जो अपने कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं और जिन कार्यक्रमों की मार्फत राज्य सरकारों के प्रयासों में मदद की जा रही है उनके अब तक के परिणामों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि देश में कुछ राज्यों के कठिन क्षेत्रों वाले कुछ गांवों को छोड़कर सभी समस्याग्रस्त गांवों में पेयजल का कम से कम एक स्रोत 31 मार्च, 1993 तक उपलब्ध करा दिए जाने का लक्ष्य है। लेकिन पानी की उपलब्धता की समस्या के कारण इस समाधान से इस क्षेत्र में किए जाने वाले प्रयासों का काम पूरा नहीं हो जाता।

जलापूर्ति के बाद की जरूरतें

अभी भी दो समस्याओं की ओर विशेष ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है। पहली, जिन गांवों बस्तियों में पीने के पानी का एक स्रोत मुहैया करा दिया गया है वहां जल की उपलब्धता को बढ़ाना और उसे 40 लीटर प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति, और सूखाग्रस्त क्षेत्रों में 30 लीटर प्रतिदिन प्रति पशु के निर्धारित स्तर पर लाना। दूसरी, जिन स्थानों पर पानी में प्रदूषण व्याप्त है उसे यथाशीघ्र समाप्त करना।

अनुसूचित जातियों को तरजीह

ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी ऐसी स्थिति देखने में आती है कि अनुसूचित जातियों/जनजातियों की महिलाओं को अपने परिवार के लिए पेयजल लाने में काफी परेशानी का सामना करना पड़ता है। इसके लिए सरकार ने यह निर्णय लिया था कि किसी भी गांव में पहला जल स्रोत हरिजन बस्ती में लगाया जाएगा जिससे अनुसूचित/जनजाति के लोगों को आसानी से पेयजल उपलब्ध हो सके।

अनुसूचित जातियों/जनजातियों को उच्च प्राथमिकता देने के लिए वर्ष 1990-91 में पेयजल के लिए निर्धारित राशि में से 35 प्रतिशत राशि इन वर्गों को पानी मुहैया कराने के लिए खर्च की गई थी। इसके अतिरिक्त, इसी वर्ष नौ राज्यों की 11,000 हरिजन बसावटों में पेयजल उपलब्ध कराने के लिए 20 करोड़ रुपये की विशेष सहायता दी गई थी।

वर्ष 1991-92 में बाबा साहेब अम्बेडकर जन्म शताब्दी कार्यक्रम के अन्तर्गत 24 राज्यों में अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जन जातियों के लिए 60 करोड़ रुपये की विशेष सहायता दी गई।

पानी की स्वच्छता के प्रयास

देश के 70 प्रतिशत क्षेत्रों में पथरीली चट्टाने हैं। इसलिए ऐसे क्षेत्रों में आधुनिक मशीनों और उपकरणों से ही खुदाई संभव हो पाती है। केन्द्र सरकार ने इन क्षेत्रों में पेयजल उपलब्ध कराने के लिए राजीव गांधी राष्ट्रीय पेयजल मिशन के अन्तर्गत 55 मिनी मिशन बनाये हैं। इसमें विदेशी सहयोग भी लिया जा रहा है। यूनिसेफ का योगदान सराहनीय रहा है।

पानी उपलब्ध कराने के साथ-साथ खारेपन को दूर करने, फ्लोरिसस पर नियंत्रण पाने, अधिक लौह को दूर करने, वैज्ञानिक तरीकों से जल स्रोतों का पता लगाने, जल स्रोतों से जल प्राप्त करने, जल गुणवत्ता की निगरानी करने तथा गिनीकृमि को दूर करने के लिए पांच उप-मिशन भी स्थापित किए गए हैं। इन उप-मिशनों के माध्यम से परम्परागत जल स्रोतों में सुधार करने, पानी को साफ करने, जल स्रोतों की सामग्री तथा डिजाइन में सुधार करने, रख-रखाव के तरीकों में सुधार करने, प्रबन्ध सूचना प्रणालियां स्थापित करने, पंचायतों और स्वयंसेवी एजेंसियों की मार्फत समुदाय को शामिल करने और जन जागरूकता अभियान चलाने को महत्व दिया जा रहा है।

हैंडपम्प द्वारा जल सप्लाई

हमारी लगभग 85 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या पेयजल के लिए हैंडपम्पों पर निर्भर है। दूसरे स्रोतों से पाइप द्वारा जल सप्लाई केवल 15 प्रतिशत है। देश में अब तक 20 लाख से भी

अधिक हैंडपम्प लगाये जा चुके हैं। इन्डिया मार्क-2 हैंडपम्प एक साधारण सिद्धान्त पर आधारित है जिसे इसके डिजाइन और इसकी क्षमता के कारण पूरे विश्व में अपनाया जा रहा है। पानी उपलब्ध कराने का यह सबसे सस्ता और सरल साधन है। इससे 45 मीटर तक की गहराई से आसानी से पानी निकाला जा सकता है। यह 85 से 90 मीटर तक की गहराई से पानी उठाने की क्षमता रखता है।

इन्डिया मार्क -2 हैंडपम्प से प्रतिघन्टा 1,000 लीटर पानी लिया जा सकता है जो कि 200-250 लोगों के लिए पर्याप्त है। इसे लगाना, चलाना तथा इसके बन्दोबस्त के लिए प्रशिक्षण पाना आसान है जिसे ग्राम स्तर पर ही पाया जा सकता है।

पिछले दशक के दौरान, हैंडपम्प के बारे में काफी अनुसंधान कार्य किया गया है जिसका पेयजल के क्षेत्र में लाभ भी दिखाई दिया है। दूसरी मशीनों की तरह पब्लिक हैंडपम्पों को भी कठिन परिस्थितियों में काम करना पड़ता है। इसलिए वे प्राय: खराब हो जाते हैं। इन हैंडपम्पों को अधिकांश ग्रामवासी अपना नहीं मानते हैं। जब तक वह पानी देता रहता है वे इसका इस्तेमाल करते रहते हैं और खराब होने पर उसे ठीक करवाने की अपनी जिम्मेवारी को नहीं समझते। हालांकि बड़े और अनपढ़ लोगों की तुलना में युवा और पढ़े लिखे लोग इन्हें ठीक करवाने और इनके रखरखाव के लिए अपना नियमित योगदान देना चाहते हैं। विशेष रूप से महिलाएं नए हैंडपम्पों के लिए भुगतान करने के लिए तैयार होती हैं।

जन जागरूकता

यह एक रोचक बात है कि जो लोग हैंडपम्प कार्यक्रम चलाते हैं, उनका यह मानना है कि जब हैंडपम्प लगाया जाता है तो जनता उसका भरपूर इस्तेमाल करती है। लेकिन ऐसा देखा गया है कि लोग फिर भी पीने के लिए कुंए के पानी का इस्तेमाल करते हैं क्योंकि उस पानी का स्वाद वास्तव में हैंडपम्प के पानी से बेहतर होता है। कुंए का पानी पीने में मीठा लगता है। लोगों में अभी भी इस जानकारी की कमी है कि स्वाद में मीठा लगने वाला यह पानी स्वास्थ्य की दृष्टि से पूरी तरह सुरक्षित नहीं है।

मानव संसाधनों के विकास के लिए लोगों में पानी की शुद्धता, पानी से होने वाली बीमारियों और उनकी रोकथाम के उपायों, हैंडपम्पों के रख-रखाव, स्वच्छ वातावरण बनाए रखने की आवश्यकता की जानकारी देने के लिए विशेष पाठ्यक्रम चलाए जाने चाहिए। इस काम में राज्य के जन-स्वास्थ्य इंजीनियरी विभाग, समाज कल्याण विभाग, शिक्षा विभाग एवं प्रसार विभाग महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। रेडियो और दूरदर्शन के माध्यम से इस दिशा में शीघ्र सफलता पाई जा सकती है। प्रशिक्षण पाठ्यक्रम इस तरह का होना चाहिए कि स्थानीय लोगों पर इसका सीधा प्रभाव पड़े, उनकी जानकारी बढ़े और वे इनसे प्रेरित व प्रोत्साहित हों। इस कार्य में महिलाओं को विशेष रूप से अग्रणी बनाया जाए क्योंकि वे ही इन जल स्रोतों का सर्वाधिक इस्तेमाल करती हैं, और इनके खराब हो जाने की स्थिति में उन्हें ही भारी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है।

आठवीं पंचवर्षीय योजना में, जहां सरकार का लक्ष्य पूर्ण ग्रामीण जनसंख्या को निर्धारित मानदण्ड के अनुसार पेयजल मुहैया कराना है, वहीं उसके प्रदूषण को भी समाप्त करना है। जल की गुणवत्ता की जांच के लिए 136 प्रयोगशालाएं लगाई गई हैं। इनमें से 100 से अधिक प्रयोगशालाओं ने काम करना शुरू कर दिया है। सरकार के कथनानुसार, देश से 1995 तक गिनीकृमि का पूर्ण उन्मूलन कर दिया जाएगा। इसका सबसे अधिक प्रभाव राजस्थान और मध्य प्रदेश में है जहां यूनिसेफ के सहयोग से दो विशेष परियोजनाएं शुरू की गई हैं। इसी तरह दूसरी समस्याओं के लिए भी उप-मिशन तीव्र कार्य कर रहे हैं। लेकिन जब तक लोगों की भागीदारी को सर्वोच्च प्राथमिकता नहीं दी जाती और इसे एक अभियान का रूप नहीं दिया जाता, तब तक एक स्थायी और सुचारू पेयजल सप्लाई के स्वप्न को साकार नहीं किया जा सकता।

53, नीमड़ी कालोनी
दिल्ली - 110052

ग्रामीण महिलाओं के लिए अतिरिक्त आय का स्त्रोत

डा0 एम. एम. कुमार

पांच सितारा होटल एवं उच्च भव्य पार्टियों में परोसे जाने वाला मशरूम अब रायपुर जिले में ग्रामीण महिलाओं के लिए अतिरिक्त आमदनी का स्रोत बन चुका है। गत 3 माह में इनके द्वारा 10 हजार किलो मशरूम उत्पादन धान के पैरा पर उगाया गया है। महिलाओं के लिए इस विशेष कार्यक्रम को जिला ग्रामीण विकास अधिकरण के प्रभारी श्री.बी.आर.नायडु ने मध्य प्रदेश की कार्यरत योजनाओं में सम्मिलित कर संचालन किया जिसमें स्थानीय इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर के मशरूम वैज्ञानिक का पूरा सहयोग लिया गया। इस कार्यक्रम को 45 दिनों की ट्रेनिंग से शुरू किया गया। इसमें महिलाओं को मशरूम उत्पादन में सबसे कठिन कार्य मशरूम बीज उत्पादन की विधि का प्रशिक्षण दिया गया। इससे यह संभव हो सका कि मशरूम उत्पादन के लिए बीज (स्पान) प्रशिक्षित महिलाएं गांव में ही तैयार कर सकीं। समय-समय पर इनकी समस्या का निदान करने विशेषज्ञ गांव जाते रहे।

महिलाएं अपने घर द्वार का काम करते हुए अतिरिक्त समय में ही मशरूम उत्पादन का कार्य कर सकती हैं तथा खाली समय से उन्हें अतिरिक्त आय प्राप्त हो सकती है। यह पूरी तरह से आज इस जिले के 16 ग्रामों की 280 महिलाएं समझ चुकी हैं। शासन द्वारा उन्हें केवल प्रशिक्षण व कुछ आवश्यक सामग्री तथा मशरूम उत्पादन के लिए एक झोंपड़ी उपलब्ध करवाई है। मशरूम उत्पादन की विधि नीचे दी जा रही है।

1. ढाई किलो पैरा कुट्टी 25 लीटर पानी में 12 से 15 घंटे तक भिगोएं।
2. अगले दिन 10 लीटर खौलता हुआ पानी मिलाएं और आधे घंटे तक रख दें। रसायन उपचार विधि द्वारा पैरा कुट्टी को उपचारित किया जा सकता है। इसके लिए आधा चाय चम्मच (डेढ़ ग्राम) बैवास्टिन एवं 35 मी.ली. फार्मेलिन 25 लीटर पानी में घोल लें और उसमें ढाई किलो पैरा कुट्टी या गेहूं भूसे को 12 से 15 घंटे तक भिगो दें।
3. पैरा कुट्टी से पानी अच्छी तरह निथार लें और 20 मिनट तक हवा में रखें।
4. निथारी गई कुट्टी में एक बोतल बीज या स्पान मिश्रित करें और बैग में भरें।
5. बैग का मुंह सुतली से बांधकर बैग के नीचे छोटे-छोटे कई छिद्र कर दें और बैग को लटका कर रखें।
6. लगभग 15-20 दिनों में भूसा या कुट्टी दूध के समान सफेद हो जाएगी। तब तक इसे रखें और कुछ न करें।
7. सफेदी आ जाने के पश्चात बैग ब्लेड से काट दें और इस तरह कुट्टी का जकड़ा हुआ ढांचा प्राप्त हो जावेगा।
8. प्राप्त ढांचे को सुतली से लटका दें एवं उसमें सुबह, दोपहर, शाम को एक-एक गिलास पानी दें ताकि उसमें नमी बनी रहे।
9. चार-छह दिनों में मशरूम निकलना प्रारंभ हो जाएगा जिसे हल्के से घुमाते हुए खींचकर निकाल लें।
10. पहली तुड़ाई के बाद पुन: पानी डालते रहें जिससे फिर उत्पादन मिलेगा।
11. कुल उत्पादन लगभग दो से ढाई किलो तक प्रति बोतल प्राप्त होता है।

उपरोक्त विधि से मशरूम उत्पादन धान के पैरा कुट्टी पर किया जाता है जिसका उत्पादन मूल्य केवल पांच रुपये प्रति किलो आता है। गांव में महिलाएं इसे 10/-रुपये प्रतिकिलो बेच कर प्रति सप्ताह ढाई सौ से पांच सौ रुपये प्राप्त कर सकती हैं। यह कार्य वे जुलाई से मार्च माह तक सरलता पूर्ण कर सकती हैं। मशरूम में उच्च कोटि के प्रोटीन, खनिज व विटामिन होते हैं जो ग्रामीण महिलाओं को कुपोषण से भी उबार सकने में सहायक होते हैं।

पौध रोग विभाग
इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय,
रायपुर (मध्य प्रदेश)

स्वस्थ पेयजल उपलब्ध कराने के प्रयासों में सफलता

✍ प्रकाश जैन

देश में अधिकांश गांवों में अब पेय जल उपलब्ध करा दिया गया है। शहरों में तो यह सुविधा पहले से ही थी। हालांकि सरसरी तौर पर देखने में इसे कोई विशेष उपलब्धि नहीं माना जा सकता। लेकिन यदि हम समस्या पर गंभीर रूप से विचार करें तो पता चलेगा कि देश के कुल 5,83,003 गांवों में से छठी पंचवर्षीय योजना के अंत तक केवल 4,21,281, गांवों में पेय जल सुविधाएं उपलब्ध करायी जा सकी थीं और अब 31 मार्च, 1993 को केवल 1499 गांव ही ऐसे बचे हैं जहां पेय जल सुविधाएं उपलब्ध कराना बाकी है।

पीने का स्वच्छ पानी उपलब्ध कराना मुख्यत: राज्यों की जिम्मेदारी है लेकिन इस प्राथमिक आवश्यकता को पूरा करने के लिए केन्द्र सरकार राज्यों का प्राथमिकता के आधार पर हाथ बटा रही है। 1972-73 में ग्रामीण जल सप्लाई कार्यक्रम (ए.आर.डब्ल्यू.एस.पी.) के अन्तर्गत तकनीकी और वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने का काम शुरू किया गया। सन् 1974-75 में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम शुरू किये जाने पर इस कार्यक्रम को रोक दिया गया लेकिन 1977-78 में इसे फिर शुरू कर दिया गया। कार्यक्रम को तेजी से लागू करने के लिए 1986 में राष्ट्रीय पेयजल मिशन आरम्भ किया गया। इसका नाम अब बदल कर राजीव गांधी राष्ट्रीय पेयजल मिशन कर दिया गया है। राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों के न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत अथक प्रयासों और पेय जल योजना तथा मिशन के अन्तर्गत केन्द्रीय सहायता से पेय जल उपलब्ध कराने का कार्य लगातार जारी रहा और सातवीं योजना में 1,53,357 गांवों में स्वच्छ पीने के पानी की सुविधाएं उपलब्ध करायीं गयी। सन् 1991-92 के अन्त तक 78.4 प्रतिशत ग्रामीण जनता को स्वच्छ पेय जल सुविधाएं उपलब्ध कराना संभव हो सका था। पीने के पानी की समस्या वाले गांवों में पहली अप्रैल 1985 को जितने गांवों का निश्चय किया गया था उनमें से अब केवल डेढ़ हजार गांवों में पेयजल सुविधाएं पहुंचाना बाकी है। ये गांव दूर-दराज के पहाड़ी इलाकों या दुर्गम स्थानों में है। केन्द्र ने इन कठिन गांवों में पेय जल सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए विशेष रूप से 178 करोड़ रुपये की राशि मंजूर की है।

पेय जल योजना के अन्तर्गत अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के गांवों में यह सुविधा उपलब्ध कराने पर विशेष ध्यान दिया गया है। इन क्षेत्रों के लिए राज्य क्षेत्र की विशेष योजना और आदिवासी उप योजना के साथ-साथ केन्द्र ने अनुसूचित जातियों के 25 प्रतिशत और अनुसूचित जनजातियों के लिए 10 प्रतिशत गांवों में पेय जल सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए जो राशि निर्धारित की है उसके अतिरिक्त समाज के कमजोर वर्गों के लिए पेयजल योजनाओं के लिए धन की अतिरिक्त व्यवस्था भी की गयी है। इस मद के अंतर्गत मार्च 1990 में 19.80 करोड़ रुपये की विशेष राशि दी गयी। 1991-92 में और 1992-93 के शुरू में डा0 बाबा साहेब आम्बेडकर शताब्दी कार्यक्रम के अन्तर्गत समाज के कमजोर वर्गों को स्वच्छ पेय जल उपलब्ध कराने के लिए 58.94 करोड़ रुपये की विशेष सहायता दी गयी।

चालू वित्त वर्ष के दौरान 1,499 गांवों में पीने का पानी पहुंचाकर देश में ऐसा कोई गांव नहीं बचेगा जहां स्वच्छ पेय जल सुविधाएं उपलब्ध न हों। इसका यह अर्थ नहीं कि इस विषय में हमने पूरी सफलता पा ली है या करने को कुछ नहीं बचा है। अब गांवों में पेय जल को सुधारने पर जोर दिया जा रहा है। इस वृहद कार्य के लिए ग्रामीण जल सप्लाई ग्रुप की रिपोर्ट में 1989 में 7,300 करोड़ रुपये के खर्च की सिफारिश की गयी थी। 1991-92 के मूल्यों के अनुसार यह राशि बढ़ाकर 11,400 करोड़ रुपये कर दी गयी है। योजना आयोग ने विभिन्न मदों में इस राशि का आवंटन इस प्रकार किया है :

	करोड़ रुपये
राजीव गांधी राष्ट्रीय पेय जल मिशन- केन्द्रीय क्षेत्र	6180.00
राज्य/ केन्द्र शासित प्रदेश न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम	5220.00
	11400.00

देश के छः राज्यों में गिनी कीड़े की समस्या है। ये राज्य हैं, आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, कर्नाटक, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश और राजस्थान। पहली जनवरी 1993 को इन राज्यों के प्रभावित 1,906 गांवों में कुल 563 मामलों की सूचना मिली। गिनी कीड़ा उन्मूलन कार्यक्रम के अन्तर्गत इस समस्या से निपटने के विशेष प्रयास किये जा रहे हैं। सीढ़ियोंदार कुओं की जगह सपाट कुएं बनाए जा रहे हैं और प्रदूषण को रोकने के लिए हैण्डपम्प और पाइपों से पानी पहुंचाया जा रहा है। आशा है कि लगभग हल कर ली गयी समस्या के दो वर्ष के जायजे के बाद देश को गिनी कीड़े से मुक्त घोषित कर दिया जायेगा।

फ्लूरोसिस नियंत्रण उप मिशन के अन्तर्गत फ्लोराइड दूर करने के लिए 481 संयत्रों में से 260 चालू कर दिये गये हैं। फ्लोराइड पानी में अधिक होने से दांत टूटने लगते हैं और हड्डियां कमजोर हो जाती हैं। यह समस्या 14 राज्यों और दिल्ली में प्रचलित है। इन राज्यों के 150 जिलों में स्वास्थ्य शिक्षा का विशेष कार्यक्रम भी चलाया गया है। जहां लोगों को बताया जाता है कि अतिरिक्त फ्लोराइड से क्या नुकसान है और इससे कैसे बचा जा सकता है।

खारे जल नियंत्रण उप-मिशन के अन्तर्गत केन्द्रीय सहायता से छार हटाने के 152 संयंत्रों की स्थापना का फैसला किया गया। इनमें से 137 संयंत्र चालू हो गये हैं। प्रभावित गांव में स्वच्छ पेयजल की वैकल्पिक व्यवस्था भी की गयी है। यह संयंत्र उसी स्थिति में लगाये जाते हैं जबकि और कोई उपाय न हो। देश के 12 राज्यों में यह समस्या मौजूद है।

टयूबवेलों के लोहे में जंग लगने और गलने तथा पानी में लोहे के कणों से पानी को नुकसान पहुंचता है। देश के 14 राज्यों और केन्द्र शासित राज्य पाण्डिचेरी में लौह अंशों को दूर करने के लिए 11,908 संयंत्र लगाने की योजना बनायी गयी। इनमें से पांच हजार से अधिक संयंत्र चालू कर दिये गये हैं।

सभी गांवों में पेयजल पहुंचाये जाने के बाद अब ऐसी बस्तियों का पता लगाया जा रहा है जहां पेयजल की समुचित व्यवस्था नहीं है। सभी राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों से पिछले वर्ष कहा गया कि वे गांवों में पेय जल सप्लाई का व्यापक सर्वेक्षण करें। दो चरणों में दिये जाने वाले सर्वेक्षण में ग्रामीण इलाकों में पेय जल सप्लाई की स्थिति और इसकी क्वालिटी का अध्ययन किया जाना है। ये दोनों रिपोर्टें आगामी जून तक प्राप्त हो जाने की सम्भावना है। आठवीं योजना में पेय जल सप्लाई की नीति इसी सर्वेक्षण के आधार पर तय की जाएगी। जिला स्तर पर 115 प्रयोगशालाएं और ऐसी चलती फिरती 17 प्रयोगशालाएं बना दी गयी हैं जहां पानी की जांच की जाती है। आठवीं योजना के अन्त तक हर जिले में जांच प्रयोगशाला बनाने का लक्ष्य है। आठवीं पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य है कि लोगों के कारगर सहयोग से न केवल सभी को जल उपलब्ध हो बल्कि स्वच्छ और समुचित मात्रा में उपलब्ध हो।

ए-4/7, मल्टी स्टोरी फलैट्स, पेशवा रोड,
नई दिल्ली - 110001.

लेखकों के लिए

रचना और अन्य प्रकाशनार्थ सामग्री भेजने वालों से अनुरोध है कि रचना भेजते समय वे कृपया ध्यान रखें कि रचना संक्षिप्त एवं रोचक होनी चाहिए। इसमें उपलब्ध करायी गयी जानकारी अप्रकाशित और प्रामाणिक होनी चाहिए। रचना दो प्रतियों में डबल स्पेस में टाइप की हुई हो जो सात-आठ पृष्ठों से अधिक की नहीं होनी चाहिए। विषय प्रतिपादन में उपशीर्षकों का प्रयोग किया जाना चाहिए।
रचना के साथ ब्लैक एंड व्हाइट फोटो भी आमंत्रित हैं।

ग्रामीण विकास में सहकारिता की भूमिका

✍ सुन्दर लाल कुकरेजा

सहकारिता का अर्थ 'सहयोग से कार्य करना' है अर्थात परस्पर हित-लाभ के लिए जो कार्य किए जाएं, वे सहकारी-सर्वहितकारी-कार्य होते हैं। सहकारिता का वर्तमान रूप अधिक औपचारिक और संगठित लगता है, किन्तु मानव विकास के इतिहास में ही सहकारिता की भावना गुथी हुई मिलती है। पाषाण युग से आधुनिकता की ओर बढ़ते मानव ने जब एक दूसरे के अनुभवों से लाभ उठाना सीखा होगा तभी से सहकारिता की भावना भी विकसित होने लगी थी। विज्ञान की नई खोजें भी बहुत कुछ इसी आधार पर संभव हुई हैं। व्यष्टि से समष्टि और समाज से राष्ट्र की अवधारणा भी परस्पर सहयोग से ही विकसित हुई होगी। भारतीय जीवन दर्शन में तो केवल सामूहिक प्रयासों से उन्नति संभव बताई गई है।

भारत में आधुनिक रूप में सहकारिता का रूप स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद तेजी से उभरा और पनपा है और विविध क्षेत्रों में उसका विस्तार हुआ है। स्वतंत्रता के तत्काल बाद सामुदायिक विकास योजनाएं आरम्भ की गई थीं जो सहकारिता पर ही आधारित थीं। शनैःशनै सहकारिता का क्षेत्र विस्तीर्ण होता गया और ग्रामीण व कृषि ऋण, कृषि उपज व विपणन के क्षेत्रों, दुग्ध व पशु पालन, हथकरघा, परिवहन और यातायात, लघु उद्योग, वानिकी आदि अनेक क्षेत्रों में सहकारी योजनाओं व कार्यक्रमों द्वारा प्रगति की ओर कदम बढ़ाए जा रहे हैं।

सहकारिता जीवन के किसी भी क्षेत्र, और देश के किसी भी भौगोलिक भाग में लाभकारी है, किन्तु अपनी गरीबी, पिछड़ेपन, अशिक्षा, और बहुत सीमा तक साधनों के अभाव के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में सहकारी संस्थाओं का विशेष महत्व है और वे इस क्षेत्र में अत्यंत उपयोगी भूमिका निभा सकती हैं। सहकारी संस्थाएं इस दिशा में निरन्तर कार्यरत हैं। आज देश भर में सहकारी संस्थाओं की कुल संख्या साढ़े तीन लाख तक पहुंच गई हैं और इनके सदस्यों की संख्या 16 करोड़ से ऊपर है। इन संस्थाओं की कार्यरत पूंजी 62,500 करोड़ रुपये हो गई है। इस प्रकार अर्थव्यवस्था का शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र बचा हो जिसमें सहकारी संस्थाओं का योगदान न हो। निजी क्षेत्र और सरकारी क्षेत्र की तरह सहकारी क्षेत्र की भी अपनी मान्यताएं, महत्व और कार्यकलाप तथा उद्देश्य हैं।

सहकारी आन्दोलन को, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्र की सहकारी संस्थाओं को, अनेक उल्लेखनीय सफलताएं प्राप्त हुई हैं। आज संस्थागत ऋण का 43 प्रतिशत धन सहकारी संस्थाओं के माध्यम से वितरित होता है। देश में कुल चीनी के उत्पादन का 60 प्रतिशत सहकारी क्षेत्र में उत्पादन होता है और किसान अपनी आवश्यकता का 34 प्रतिशत उर्वरक सहकारी संस्थाओं से खरीदते हैं। दूर-दराज के गांवों में आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति सहकारी संस्थाओं के ही माध्यम से संभव हो पाती है। परिवहन की समस्या को भी सहकारी प्रयासों से ही दूर करने की कोशिश की जा रही है। दुग्ध उत्पादन और पशुधन के क्षेत्र में सहकारिता की उपलब्धि तो अब घर-घर चर्चा का विषय बन चुकी है। पशु पालन, लघु उद्योग, फसलों की बिक्री के लिए सहकारी विपणन मंडिया आदि अपने अपने ढंग से ग्रामीण अर्थव्यवस्था और आर्थिक विकास में अपना योगदान दे रही हैं।

आठवीं योजना में सहकारिता आन्दोलन को ग्रामीण विकास और निर्धनता निवारण का मुख्य साधन मान कर इसे प्रोत्साहन देने की योजनाएं तैयार की गई हैं। छठी योजना में गांवों में गरीबी की समस्या पर विशेष ध्यान दिया गया और सातवीं योजना में भी गांवों में सामाजिक न्याय का वातावरण बनाने वाली विकास योजनाओं पर ध्यान केन्द्रित किया गया। आठवीं योजना का तो काफी बड़ा भाग--30 हजार करोड़ रुपये--ग्रामीण विकास के लिए रखा गया है। साथ ही यह भी अनुमान है कि राज्य सरकारें भी इस अवधि के दौरान करीब 15,000 करोड़ रुपये ग्रामोत्थान के लिए खर्च करेंगी।

आठवीं योजना में इस पर बल दिया गया है कि ग्रामीण विकास का अर्थ यह है कि लोगों को आर्थिक लाभ होने के साथ-साथ समाज के सम्पूर्ण ढांचे में भी अधिकाधिक परिवर्तन हों। गांव के लोगों के लिए आर्थिक विकास की बेहतर संभावनाएं तभी हो सकेंगी, जब ग्राम विकास की प्रक्रिया में जनता अधिक से अधिक भाग ले, योजना का विकेन्द्रीकरण किया जाए, भूमि सुधारों को

अच्छे ढंग से लागू किया जाए। इसी सन्दर्भ में सहकारी आन्दोलन और सहकारी संस्थाओं को प्रोत्साहन देने और उन्हें विकास का साधन बनाने पर भी बल दिया गया है।

योजना आयोग की सहकारिता आन्दोलन से अपेक्षा है कि सहकारी समितियां कृषि के क्षेत्र में एक ओर किसानों को निवेश का संवितरण करने और उन्हें सेवाएं प्रदान करने तथा दूसरी ओर कृषि उपज के विपणन और प्रसंस्करण में सहायता देने में प्रमुख भूमिका अदा करें। राजकोषीय घाटा कम करने के प्रयास में उर्वरक की कीमतों में बढ़ोतरी के कारण यह क्षेत्र सबके ध्यान का केन्द्र बना हुआ है। उर्वरक के वितरण में सहकारी संस्थाओं ने उचित मूल्य पर उर्वरकों की बिक्री के लिए विशेष व्यवस्था करके किसानों को मदद दी है।

सहकारी कृषि ऋण

सहकारी कृषि ऋण समितियां, ग्रामीण क्षेत्रों में सहकारी आन्दोलन का मुख्य साधन हैं। प्राथमिक कृषि ऋण समितियों द्वारा किसानों को उनकी सभी आवश्यकताओं के लिए ऋण उपलब्ध कराया जाता है। सातवीं योजना की अवधि में सहकारी संस्थाओं के माध्यम से 12,570 करोड़ रुपये के कृषि ऋण का वितरण किया गया। आठवीं पंचवर्षीय योजना में कृषि ऋण को, विशेष रूप से सहकारी वित्त संस्थाओं के माध्यम से सरल और कारगर बनाने के लिए इन संस्थाओं को स्वायत्त और आत्मनिर्भर एजेंसी बनाने पर जोर दिया गया है। सहकारी विनियमों में अपेक्षित परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए सहकारी संस्थाओं को सुदृढ़ बनाने के लिए इस नीति का भी फिर से निर्धारण किया जा रहा है। इसके अनुरूप सहकारी ऋण समितियों को लोकतांत्रिक बनाने तथा उन्हें अपना कार्य करने के लिए अधिक स्वायत्तता दी जा रही है। इसके लिए इन समितियों की सदस्य संख्या में वृद्धि के प्रयास किए जा रहे हैं।

ग्रामीण विकास के लिए विभिन्न दृष्टिकोणों और क्षेत्रों में जो सर्वांगीण प्रयास किए जा रहे हैं उनसे यह आशा की जाती है कि भारतीय किसानों के जीवन स्तर में सुधार आयेगा और उनकी ऋण की आवश्यकताएं बढ़ेंगी। उन्नत प्रौद्योगिकी के प्रसार से भी उनके कारोबार में वृद्धि होगी और किसान यह स्वीकार करने लगेंगे कि सहकारी वित्त संस्थाएं उनके लिए आर्थिक रूप से लाभकारी हैं। ऐसा होने पर ऋण का लाभ उठाने वाले सदस्यों की संख्या में भी वृद्धि होगी। इस दृष्टि से सहकारी संस्थाओं में काम करने वाले प्रबंधकीय वर्ग का पुन: प्रशिक्षण और उनकी सोच का व्यवसायीकरण भी किया जायेगा।

सरकार द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में हाल ही में किए गए परिवर्तनों से सहकारी समितियों को कृषि उत्पादों के विपणन, कृषि संसाधन इकाइयों की स्थापना आदि क्षेत्रों में अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का अवसर प्राप्त हुआ है। इसलिए विगत में शुरू की गई कई परियोजनाओं को आगे भी अधिक प्रभावकारी ढंग से चालू रखा जाएगा।

सहकारी ऋण समितियों की गतिविधियां केवल किसानों को कर्जा देने तक ही सीमित नहीं हैं। ये समितियां वस्तुत: ग्रामीण क्षेत्र के सर्वांगीण विकास और किसानों की आर्थिक स्थिति सुधारने की मुख्य वाहक बन चुकी हैं। इनके कार्य का विस्तार, ऋण देने से लेकर किसानों के उत्पादों की बिक्री, उनके लिए शीतगारों और गोदामों के निर्माण से लेकर कताई मिलों और चीनी मिलों की स्थापना तक हो गया है। महाराष्ट्र और गुजरात में सहकारी चीनी मिलें, आनन्द (गुजरात) में दुग्ध सहकारी संस्थाएं आदि आर्थिक विकास में अपना अमूल्य योगदान दे रही हैं।

सहकारी संस्थाओं की सीमाएं

सहकारी संस्थाओं ने विभिन्न क्षेत्रों में पर्याप्त उपलब्धियाँ अर्जित की हैं। फिर भी, उनकी पूरी क्षमता के उपयोग पर अनेक अंकुश लगे हैं और उनकी सीमाएं बांध दी गई हैं वरन इन संस्थाओं को और भी सफलता मिल सकती थी। राष्ट्रीय सहकारिता विकास निगम (एन.सी.डी.सी.) की 35 वीं आम सभा में बोलते हुए इसके अध्यक्ष और केन्द्रीय कृषि मंत्री डा. बलराम जाखड़ ने भी अनुभव किया कि सहकारी कृषि ऋण समितियां, सहकारी ढांचे की सबसे कमजोर कड़ी हैं और उन्होंने इन्हें आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बनाने की आवश्यकता पर बल दिया।

इन सहकारी ऋण समितियों पर सबसे प्रमुख उनके काम काज में सरकारी अधिकारियों का निरंतर बढ़ता हुआ हस्तक्षेप है जि१सके कारण इन समितियों से गैर सरकारी स्वैच्छिक नेतृत्व का लोप होता जा रहा है और धीरे-धीरे इनका सहकारी और लोकतांत्रिक स्वरूप भी नष्ट होता जा रहा है। किसानों में अशिक्षा के कारण इन सहकारी संस्थाओं को राजनीतिक हित साधन का केन्द्र बना दिया जाता है और इनका शोषण किया जाने लगा है। सहकारिता के विभिन्न स्तरों--प्रखंड, जिला व राज्यों--में तालमेल का अभाव भी इन संस्थाओं के विकास में बाधक बन जाता है। सदस्यों की अज्ञानता और कई बार अप्रशिक्षित प्रबंधकों की

शेष पृष्ठ 34 पर

सहकारिता के आधार पर रोजगार सृजन

चन्द्र शेखर मिश्रा

आठवीं योजना का मुख्य उद्देश्य गरीबी उन्मूलन है। गरीबी उन्मूलन के लिए योजना अवधि (1992 से 1997) में रोजगार के अवसरों को बढ़ाने पर जोर दिया गया है। यह सर्वविदित है कि देश में उच्च-शिक्षित, पढ़े-लिखे, अशिक्षित व अकुशल बेरोजगारों की फौज लगातार बढ़ती जा रही है। रोजगार के अवसरों की दर एवं श्रमिक शक्ति की दर में काफी अन्तर है, जिस कारण बेरोजगारों की संख्या बढ़ती जा रही है। सन् 1970 एवं 1990 के दशकों के दौरान रोजगार वृद्धि की दर औसतन 2 प्रतिशत रही किन्तु यह वृद्धि इतनी पर्याप्त नहीं थी कि वह पहले से चली आ रही बकाया बेरोजगारी की समस्या को हल करने के साथ-साथ श्रम शक्ति में होने वाली वृद्धि को भी रोजगार प्रदान कर सके। बेरोजगारी उन्मूलन ही एकमात्र प्रभावशाली उपाय है, जिसके माध्यम से विकास योजनाओं की गरीबी उन्मूलन असमानता को कम करने और आर्थिक विकास को गति देने जैसे उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है। सरकार ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार के अवसर बढ़ाने पर काफी जोर दे रही है, क्योंकि सबसे अधिक बेरोजगारी गांवों में है। लगभग सवा करोड़ ग्रामीणों के पास कोई काम नहीं है, और जिनके पास है, वह भी बहुत ही कम अवधि के लिए है। रोजगार के अभाव में लोगों की क्रयशक्ति बहुत कम है।

रोजगार के क्षेत्र

रोजगार के क्षेत्रों में प्रमुख कृषि, यातायात, निर्माण, सेवा, उत्पादन आदि क्षेत्र आते हैं। आज भी काम कर रही कुल श्रम-शक्ति का दो तिहाई भाग कृषि क्षेत्र में ही मुख्य रूप से संलग्न है। पिछले 25 वर्षों के दौरान कृषि से हटकर अन्य क्षेत्रों में रोजगार में परिवर्तन आए हैं। देश की कुल जनसंख्या का लगभग 70 प्रतिशत भाग आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में रहता है। जमीन के छोटे-छोटे टुकड़ों की बहुतायत है। राष्ट्रीय आय में कृषि से प्राप्त आय का अंश जो 1950 में 60 प्रतिशत था वह आज घटकर 33 प्रतिशत रह गया है। ग्रामीण स्थिति में परिवर्तन अवश्य आए हैं लेकिन रोजगार के अभाव में बुनियादी चीजें, भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा व स्वास्थ्य, सही ढंग से प्राप्त करने में करोड़ों लोग आज भी अपने को असमर्थ महसूस करते हैं। इसलिए यह अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है कि ग्रामीण एवं शहरी बेरोजगार लोगों के लिए दीर्घकालीन लाभकारी व्यवसाय/कारोबार या रोजगार के अवसरों का सृजन किया जाए।

वर्तमान स्थिति

स्वतन्त्रता के बाद सार्वजनिक क्षेत्र ने देश की अर्थव्यवस्था के विकास एवं रोजगार के अवसर बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। मार्च 1990 को सार्वजनिक क्षेत्र में 244 केन्द्रीय उद्यम कार्यरत थे और उन पर 92,000 करोड़ रुपये की पूंजी लगी थी। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम 23 लाख लोगों को रोजगार प्रदान कर रहे थे। सरकार सार्वजनिक क्षेत्र के उन उद्यमों को जो लगातार 5 वर्ष से घाटे में चल रहे है और जिनके लाभ पर चलने की कोई संभावना नहीं है, समीक्षा के बाद दूसरी इकाई में मिलाने अथवा श्रमिकों के हितों में यदि श्रमिक चाहें तो, सहकारिता के आधार पर चलाने का फैसला किया गया है।

वर्तमान समय में 95 उद्योग घाटे में चल रहे है। केन्द्र सरकार की वित्तीय स्थिति को देखते हुए सार्वजनिक क्षेत्र में पूंजी निवेश व रोजगार अवसरों में वृद्धि की सभावना नहीं के बराबर है। विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा पोषित/संचालित उद्योगों की हालत भी लगभग समान है। वहां भी रोजगार अवसर में वृद्धि की गुंजाइश नही है। स्वतंत्रता के बाद उपभोक्ता वस्तुओं के विभिन्न क्षेत्रों में निजी उद्यमियों ने प्रमुख भूमिका निभाई है व सराहनीय कार्य किया है। इससे रोजगार के अवसर में भी वृद्धि हुई है लेकिन निजी क्षेत्र के उद्योगपतियों ने (कुछ को छोड़कर) समाज, कर्मचारियों व संस्थान के प्रति अपने कर्तव्यों का उस रूप में पालन नहीं किया है जैसी उनसे अपेक्षा थी। इस क्षेत्र में रोजगार अवसर बढ़ने की गुंजाइश है।

सरकारी क्षेत्र व रोजगार के अवसर

लोकतंत्र पर आधारित आर्थिक नियोजन में सहकारी संस्थाओं को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। स्वतंत्रता के बाद इसे राष्ट्रीय नीति का अभिन्न अंग बनाया गया और सभी पंचवर्षीय

योजनाओं में सहकारी क्षेत्र को अधिक से अधिक जिम्मेदारी सौंपी गई। योजना में यह बात स्वीकार की गई कि कृषकों, उपभोक्ताओं, श्रमिकों और समाज के कमजोर वर्गों की आवश्यकता को विशेष ध्यान रखते हुए सहकारिता के क्षेत्र को जितना बढ़ाया जायेगा उतना ही वह सामाजिक स्थिरता, रोजगार बढ़ाने तथा त्वरित आर्थिक विकास के लिए महत्वपूर्ण बनता जाएगा। विभिन्न योजनाओं के दौरान किए गए निरंतर प्रयासों के फलस्वरूप सहकारी संस्थाओं के आकार में काफी वृद्धि हुई है। भारत वर्ष में 1991 में सभी प्रकार की सहकारी संस्थाओं की संख्या 3.48 लाख थी। सदस्य संख्या 15 करोड़ एवं उनकी कार्यशील पूंजी 50,000 करोड़ से भी अधिक थी। एक अनुमान के अनुसार सभी प्रकार के सहकारी उद्योगों में लगभग 1.60 करोड़ व्यक्ति सीधे व परोक्ष रूप से रोजगार में लगे हुए हैं। देश की कुल सहकारी संस्थाओं में से 2.22 लाख सहकारी संस्थाएं, ग्रामीण क्षेत्र के विकास में संलग्न हैं। ग्रामीण क्षेत्र में कार्यरत प्रमुख सहकारी संस्थाएं निम्नानुसार हैं :-

प्रमुख क्षेत्र में कार्यरत ग्रामीण सहकारी संस्थाएं

क्रमांक	विवरण संख्या
1. कृषि साख सहकारिता (कृषि क्षेत्र)	90,081
2. दुग्ध सहकारिता	59,571
3. सहकारी चीनी मिले	243
4. बुनकर सहकारिता	17,677
5. श्रमिक सहकारिता	18,003
6. विपणन सहकारिता	6,930
7. कपास जिनिंग एवं प्रेसिंग	429
8. सहकारी कताई मिले	108

उपरोक्त के अतिरिक्त फार्मिंग, मत्स्य पालन, सिचाई वन श्रमिक, सहकारिता, उपभोक्ता भंडार आदि समितियां कार्यरत हैं।

रोजगार की संभावनाएं

किसी भी देश की सरकार के लिए यह संभव नहीं है कि काम चाहने वाले अपने सभी नागरिकों को संगठित क्षेत्र में नौकरी दे सके, लेकिन नागरिकों को अपना जीवन-बसर करने हेतु रोजगार के अवसर (व्यवसाय/कारोबार) उपलब्ध कराना सरकार का सामाजिक व नैतिक दायित्व है। सरकार ने इस दिशा में प्रयास भी किए हैं, लेकिन बढ़ती जनसंख्या का दबाव और वित्तीय साधनों की कमी के कारण किए गए प्रयासों के परिणाम स्पष्ट दिखाई नहीं देते हैं।

देश में कृषि के साथ ही साथ अकृषि (नान फार्म सेक्टर) में रोजगार के अवसरों में वृद्धि की अपार संभावनाएं है। प्रश्न यह है कि रोजगार के अवसर किस प्रकार उपलब्ध कराए जाएं। इसके दो स्वरूप प्रमुख हैं :- (1) संगठित क्षेत्र (संस्था के माध्यम से) (2) असंगठित क्षेत्र (व्यक्तिगत रूप से)। असंगठित क्षेत्र में कभी भी श्रमिकों/दस्तकारों, उद्यमियों को वे सभी सुविधाएं उपलब्ध नहीं हो सकतीं जो संगठित क्षेत्र में कार्य करने पर प्राप्त होंगी। अतएव सरकार इस बात के लिए प्रयास करें कि सभी प्रकार के बेरोजगार व्यक्ति अपनी आवश्यकता व कुशलता के आधार पर संगठन बनाकर कार्य करें। यह संगठन दो प्रकार का हो सकता है :

(1) औपचारिक संगठन - (फार्मल आरगानाईजेशन) - यानी सहकारी संगठन अथवा स्वैच्छिक सगठन (एन.जी.ओ.)

(2) अनौपचारिक संगठन -(नान फार्मस आरगानाईजेशन) - यानि यूर्जर्स ग्रुप छोटे-छोटे समूह 10-15 लाभार्थियों के। एक गांव में कई समूह हो सकते हैं।

ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के सहकारी संगठन स्थापित कर उनके माध्यम से जहां प्रतिवर्ष लाखों लोगों को रोजगार उपलब्ध कराया जा सकता है, वहीं क्षेत्र के लोगों को विविध सुविधाओं की उपलब्धता सुगमता से होगी। लोगों की प्रत्यक्ष भागीदारी संगठन संचालन में होगी, जिससे वे रुचि लेकर कार्य करेंगे।

उपरोक्त दोनों प्रकार के संगठन माध्यम से ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में कृषि के अतिरिक्त निम्न प्रमुख गैर-कृषि में कार्य प्रारम्भ कर रोजगार के अवसर उपलब्ध कराया जा सकता है।

(1) उत्पादन क्षेत्र :

1. दुग्ध उत्पादन
2. मत्स्य पालन
3. मुर्गी पालन
4. सुअर पालन

(2) विपणन/सेवा क्षेत्र :

- कृषि निवेश (खाद, बीज, कृषि रोजगार आदि)
- कृषि यंत्रों/उपकरणों का रख-रखाव/मरम्मत कार्य

- स्वास्थ्य सेवा/परिवार कल्याण

- शिक्षा सहकारी संगठन

- दृश्य श्रव्य उपकरण (रेडियो, टेलीविजन मरम्मत केन्द्र)

- बिजली संबंधी कार्य ।

(3) **यातायात क्षेत्र :**

- यातायात सहकारी संगठन (व्यक्ति परिवहन हेतु)

- माल ढुलाई सहकारिता (कृषि उपज व अन्य -

- वस्तु बाजार पहुंचाने एवं लाने हेतु)

(4) **वस्त्र क्षेत्र :**

- बुनकर सहकारिता

- कपास जिनिंग और प्रोसेसिंग

- हथकरघा संगठन

(5) **प्रक्रिया क्षेत्र :**

- आटा-मिल, दाल मिल, चावल मिल

- तेल निकालना

- कृषि उत्पाद की प्रक्रिया

(6) **मानव संसाधन क्षेत्र :**

- श्रमिक सहकारी संगठन

- श्रम कल्याण संगठन

- व्यवसायिक प्रशिक्षण केन्द्र

उल्लेखनीय प्रशिक्षण केन्द्र :

सहकारी संस्थाओं ने देश की अर्थव्यवस्था के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया है इसमें संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है। कृषि, चीनी उद्योग, रासायनिक खाद, दुग्ध उद्योग, विपणन, वस्त्र सहकारी भंडारण, मत्स्यपालन, महिला बैंक, उपभोक्ता भंडार आदि कई अन्य क्षेत्रों में सहकारी क्षेत्र अर्थव्यवस्था को मजबूत एवं रोजगार उपलब्ध कराने में संलग्न हैं। यह भी सही है कि सभी राज्यों में सहकारी आन्दोलन का समुचित एवं समान विकास नहीं हुआ है। सहकारी चीनी मिल एवं दुग्ध सहकारिता ने महाराष्ट्र व गुजरात राज्य के ग्रामीण जनजीवन मेंअपना अलग स्थान प्राप्त किया है। कृषक सदस्य गौरव व विश्वास से इन संस्थाओं का संचालन कर रहे हैं। कुल चीनी उत्पादन में सहकारी क्षेत्र का 60 प्रतिशत का योगदान है। कृषि के बाद रोजगार उपलब्ध कराने में हथकरघा क्षेत्र का महत्वपूर्ण स्थान है। देश में जितने वस्त्र का उत्पादन होता है, उसका 30 प्रतिशत हथकरघा क्षेत्र से ही आता है। देश के कुल हथकरघों का 58 प्रतिशत हथकरघा (16 लाख) सहकारी क्षेत्र की परिधि में आता है। समाज का कमजोर वर्ग इन करघों से जुड़कर रोजगार प्राप्त कर रहा है। इस क्षेत्र के विस्तार एवं विकास की आवश्यकता है, ताकि लाखों कमजोर बेरोजगार लोगों को रोजगार उपलब्ध हो सके। इस उद्योग को बढ़ावा देना न सिर्फ रोजगार की दृष्टि से बल्कि समग्र ग्रामीण विकास के लिए भी आवश्यक है।

तकनीकी मार्गदर्शन एवं सहयोग की आवश्यकता :

सभी आर्थिक गतिविधियों के लिए समय पर ऋण उपलब्धता महत्वपूर्ण है। लेकिन ऋण अनेक निवेश वस्तुओं में से एक है। यह अकेले आर्थिक परिदृश्य को नहीं बदल सकता। ऋण तभी उत्पादक होगा जबकि माल, मूलभूत संरचनात्मक सुविधा, व्यवसाय प्रशिक्षण, तकनीकी मार्गदर्शन, व पर्याप्त रूप से सभी विभागों का सहयोग हासिल हो। हाल के वर्ष बैंकों द्वारा विविध प्रयोजनों हेतु ऋण तो काफी उपलब्ध कराए गए, लेकिन उनका दुरुपयोग उनुत्पादक कार्यो में ज्यादा हुआ है। जिस उद्देश्य हेतु ऋण दिया गया उसमें नहीं लगाया गया। इसके कई कारण हैं, उनमें मुख्य कारण यह हैं कि :

(1) स्थानीय संसाधनों को ध्यान में रखकर व्यावहारिक परियोजनाएं नहीं बनाई जाती।

(2) वित्तीय संस्थाओं/बैंकों द्वारा समय पर कार्यशील पूंजी की व्यवस्था न करना।

(3) तकनीकी मार्गदर्शन, निगरानी व पर्यवेक्षण का अभाव।

(4) संबंधित व्यवसाय के लिए व्यावहारिक प्रशिक्षण सुविधाओं की कमी ।

(5) राज्य सरकार/बैंक व वित्तीय संस्था एवं उद्यमी के बीच संवाद और समन्वय न होना।

(6) उद्यमियों में निष्ठा, व्यवसाय के प्रति लगन व प्रेरणा का अभाव।

नाबार्ड (राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक) देश के प्रत्येक जिले में जिला कार्यालय खोलने जा रहा है। कई राज्यों में कार्यालय खुल भी गए हैं। इन कार्यालयों में 4 से 5 क्षेत्रों के तकनीकी अधिकारी होंगे जो स्थानीय क्षमता और संसाधनों आदि की पूर्ण जानकारी लेकर व्यावहारिक ऋण योजनाएं बनाने में व्यक्तिगत लाभार्थी/समूहों व समितियों को तकनीकी मार्गदर्शन व परामर्श प्रदान करेंगे। आशा है, इससे वर्तमान व्यवस्था में कुछ सुधार आएगा।

व्यावहारिक रूप से यह कई बार देखने को मिलता है कि छोटे-छोटे ग्रामीण दस्तकारों, शिल्पियों, स्वरोजगार स्थापित करने वाले युवक/युवतियों को बैंक/वित्तीय संस्थाओं, सरकारी अधिकारियों एवं अन्य विभागों से अपेक्षित सहयोग नहीं मिल पाता, जिस कारण छोटे-छोटे उद्यमी, युवक/युवतियां प्रबल इच्छा शक्ति के बावजूद निराश होकर व्यवसाय प्रारम्भ ही नहीं कर पाते अथवा प्रारम्भ होने के बाद शीघ्र बंद कर देते हैं। रोजगार सृजन एवं देश में कुटीर व लघु उद्योग के विकास व उत्पादन में वृद्धि हेतु कर्मचारियों को अपनी सोच (मनोवृति) में परिवर्तन लाना आवश्यक है। दूसरी ओर व्यक्तिगत लाभार्थी /उद्यमी/संस्थाएं भी ऋण को आय न समझें बल्कि उसे सही ढंग से उत्पादक कार्यों में लगाकर रोजगार को आगे बढ़ाएं। इसी में उनका, समाज व राष्ट्र का हित निहित है।

उप प्राचार्य
ए.सी.एस.टी. आई
सहकारी प्रबंध संस्थान
शास्त्री नगर, पटना- 23.

लघु कथा

पढ़ा बेटा

लल्लन त्रिवेदी

कहां गये थे ?

"किसान सहायक का फार्म भरने।"

सतीश कोई न कोई फार्म भरता ही रहता था। पर आज पिता के पूछने पर उसे लगा जैसे वह कुछ कुढ़ रहे हैं। उनकी आन्तरिक आत्मा अप्रसन्न है और वे कुछ अधिक ही कहना चाह रहे हैं किन्तु कह नहीं पा रहे हैं। और शायद इसीलिए सतीश इसे दूसरे ही अर्थों में लेकर बहकने लगा। सोचने लगा बेरोजगार....., नौकरी...... समझ का फेर......, तमाम बातें। पर पिता रमाकान्त बड़े ही सुलझे दिमाग के आदमी थे। अभी पार साल ही सतीश के एम.ए. इग्जाम फीस की कोई व्यवस्था नहीं हो पा रही थी तो उन्होंने खड़ी फसल खेत गिरवी रख दिया था। जो इतने दिनों बाद भी साहूकार के चंगुल से नहीं छूट पाया है। फिर भला क्यों न कुढ़ें। कितनी मशक्कत से बाप दादा की सम्पति और बाल बच्चों के पीछे खपे हैं। बुढ़ापा है ही। फिर इसी लय में तो आकर उन्होंने उस दिन सतीश से कहा था, "बेटा, बैलों को खेत पर हांक ले चल। हम खाद और बीज लेकर आते हैं। फिर जहां जाना हो चले जाना।

परन्तु सतीश ने एक नहीं सुनी थी। "हमें देर हो रही है। पोस्टल ऑर्डर लेकर रजिस्ट्री करनी है।" कहते चला गया। और रमाकान्त बड़बड़ाते रह गये थे असहाय।

सोचते सोचते सतीश को निराशा भरे दिनों की पीड़ा साल गयी।

उसने कितनी दौड़ धूप की है। दिन को दिन नहीं, रात को रात नहीं समझा। कितना कष्ट झेला है, उसने एक अदद नौकरी के लिए। इमप्लायमेंट न्यूज की वैकेन्सियां देखते-देखते आंखे पथरा गई हैं उसकी। फार्मस भरे हैं परीक्षाएं दी हैं पर कुछ भी हाथ नहीं आया। सब टांय टांय फीस्स। अन्दर ही अन्दर वह छटपटाने लगा। काश यह वक्त मैंने खेतों में ही लगाया होता।

"बेटा एक बात तो बताओ। अचानक सतीश को जैसे किसी ने सोते से जगा दिया। तुम किसानी तो करना नहीं चाहते। इन कामों में तुम्हारा मन नहीं लगता फिर तुम किसान सहायक कैसे बनोगे ?

अब रमाकान्त के कुढ़न की प्रत्यंचा के इस प्रश्न बाण से वह रहा सहा भी टूटकर बिखर गया। कुछ भी नहीं बोल सका, अपलक सामने देखता रहा। कुछ भी नहीं समझ पा रहा था। कुछ देर बाद चुपचाप अपूर्व स्फूर्ति से उठा और द्वार पर रखे पशुओं के गोबर की ढांची सिर पर रखकर खेतों की ओर चल दिया।

डाक सहायक
प्रधान डाकघर, बांदा (उ.प्र.)

दुग्ध उद्योग : पंजाब का नया क्षितिज

राष्ट्रीय खाद्यान्न उत्पादन में अग्रणी पंजाब का 'केन्द्रीय भंडार' में योगदान 60 प्रतिशत है। एक अन्य क्षेत्र जिसमें पंजाब ने महत्वपूर्ण सफलता पाई है – वह है दुग्ध उत्पादन। पंजाब में देश की प्रति व्यक्ति प्रति दिन दुग्ध उपलब्धता सबसे अधिक 675 ग्राम है और देश के कुल दुग्ध उत्पादन में पंजाब का हिस्सा 10 प्रतिशत है।

पंजाब में दुग्ध उद्योग का योजनाबद्ध विकास दूसरी पंचवर्षीय योजना 1955-60 में शुरू हुआ जब डेयरी विकास का एक अलग विभाग बनाया गया। इस विभाग द्वारा 1962 में अमृतसर के वर्का नामक स्थान पर पहला दुग्ध संयंत्र लगाया गया। आज राज्य में दूध एवं दुग्ध उत्पादों के काम में 17 संयंत्र लगे हुए हैं।

पंजाब की कृषि आधारित ग्रामीण अर्थव्यवस्था में दुग्ध उद्योग एक महत्वपूर्ण संतुलनकारी घटक है। एक अनुमान के अनुसार लगभग 80 प्रतिशत छोटे एवं सीमान्त किसानों ने अपनी आय बढ़ाने के लिए डेयरी उद्योग चलाना शुरू किया है। इसके अलावा अधिक खाद्यान्न उत्पादन से कृषि भूमि पर निरंतर बढ़ते दबाव तथा जोतों के आकार में भारी कमी के कारण भी यह विविधिकरण अवश्यंभावी था।

आनन्द पद्धति

कृषि के विविधिकरण के कारण पंजाब में सहकारी दुग्ध उद्योग की शुरुआत हुई, जो वर्ष 1970 में आपरेशन फ्लड के तहत स्थापित किया गया था। सन् 1979-87 की अवधि में आपरेशन फ्लड एक और दो के अंतर्गत इस कार्यक्रम का व्यापक विस्तार हुआ और इसके लिए लगभग 80 करोड़ रुपये का परिव्यय रखा गया। राज्य के कुल 17 संयंत्रों में से नौ सहकारी क्षेत्र में हैं, तीन सार्वजनिक क्षेत्र में तथा पांच निजी क्षेत्र में हैं।

सहकारिता की यह गतिविधियां जानी मानी 'आनंद पद्धति' के अनुरूप हैं जिनमें दुग्ध-उत्पादकों को दुग्ध उद्योगों के सभी स्तरों से संबद्ध रखा जाता है जैसे तकनीक अपनाने का प्रशिक्षण देना है। क्षेत्रीय प्रशिक्षण केन्द्र भी पशु प्रबंधन, दुग्ध उत्पादन, चारा उत्पादन तथा पशुओं के पोषण का विशेष प्रशिक्षण देते हैं।

भूतपूर्व सैनिकों तथा विधवाओं के पुनर्वास के लिए एक डेयरी उद्योग योजना शुरू की गई है। यह योजना इन वर्गों में अत्यंत लोकप्रिय रही है। भूतपूर्व सैनिकों ने 1990-91 में दो सौ से अधिक मिनी डेयरी इकाइयां शुरू कीं। विधवाओं के पुनर्वास की योजनाओं के अंतर्गत मार्च 1992 के अंत तक 1300 मिनी डेयरी एकक स्थापित किए गए।

वाणिज्यिक आधार

ग्रामीण क्षेत्र डेयरी योजना के योजनाबद्ध विकास के अतिरिक्त कुछ कस्बों और शहरों में अनेक छोटी-छोटी दुग्ध-शालाएं खुल गई हैं। इसके कारण पशुओं का पालन-पोषण एवं प्रबंधन अव्यवस्थित हो गया है। ऐसी डेयरियों के कारण डेयरी उद्योग के वाणिज्यीकरण का विकास भी अवरुद्ध हुआ है। इस उद्योग के मजबूत वाणिज्यीकरण के लिए उन शहरों में डेयरी उद्योग के विकास का निश्चय किया है। जिनकी जनसंख्या 15,000 अथवा इससे अधिक और 30,000 से कम है। पहले चरण में पांच कस्बे- जगरावं (लुधियाना), तरन-तारन (अमृतसर), सरहिन्द (पटियाला), धूरी (संगरुर) तथा नवां शहर (जालंधर) को चुना गया है।

अच्छी किस्म के मिश्रित चारे की उपलब्धता दूध की अधिकतम आपूर्ति के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। दुग्ध-उत्पादकों के लिए इन वस्तुओं की खरीद आसान बनाने के लिए सरकार द्वारा चारा, खली तथा खनिज मिश्रण आवश्यक वस्तु अधिनियम 1953 के दायरे में लाया गया है। उत्पादकों से संयत्र तथा बाद में उपभोक्ताओं तक दूध की आसान सप्लाई सुनिश्चित करने के लिए इस अधिनियम के तहत तीन वैधानिक उपाय किए गए हैं। चारा उत्पादकों को जांच सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए एक विश्लेषण प्रयोगशाला खोली गई है।

पंजाब डेयरी विकास विभाग द्वारा तैयार विवेकपूर्ण दुग्ध नीति का उद्देश्य पशु प्रजनन, स्वास्थ्य सेवा तथा बिचौलियों की समाप्ति से दूध का उत्पादन बढ़ाना है। नई नीति के अंतर्गत कमजोर वर्गों, विशेषकर अनुसूचित जातियों, भूमिहीन मजदूरों तथा सीमांत और छोटे किसानों के लिए विशेष योजनाओं के माध्यम से रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने पर बल दिया गया है।

शेष पृष्ठ 30 पर

विकास की रोशनी से कोसों दूर : भारतीय महिला मजदूर

डा0 देवनारायण महतो

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता" जैसी महान विचारधारा वाले देश भारत में संवैधानिक तौर पर समानता का अधिकार रखने वाली स्त्रियां व्यवहारिक जीवन में आज भी पुरुषों की अपेक्षा निम्न दर्जे का नागरिक समझी जाती हैं। इक्कीसवीं सदी की चौखट पर दस्तक दे रहे भारत में चहुंमुखी विकास के ढोल की पोल तब खुल जाती है जब तकरीबन साढ़े छः करोड़ महिला मजदूरों की त्रासदीपूर्ण जिन्दगी की विवशता की व्यथा-कथाओं से आये दिन पत्र-पत्रिकायें पटी रहती हैं। आर्थिक, मानसिक, और श्रम-संबंधी शोषणों के शिकार इन महिला मजदूरों को जार-जार जिन्दगी के तमाम तार तब बिखरने लगते हैं, जब यौन शोषणों का शिकार होकर भी जिन्दगी को जिन्दा रखने के सिवा कुछ भी नहीं कर पाने में विवश हो जाती है। महिला मुक्ति आन्दोलन के नाम पर जितने भी संगठन कार्यरत हैं वे सब प्रायः किसी न किसी खास वर्ग की स्वार्थ पूर्ति करते हैं या फिर सामाजिक कार्य के नाम पर राजनीति की रोटी सेक रहें हैं। इनके कल्याण हेतु निर्मित कानून भी भ्रष्ट सरकारी मशीनरी के जाल में फंसकर असफल हो जाते हैं। इनके उत्थान एवं कल्याण के वास्ते हाल में संसद के भीतर एवं बाहर काफी बाद-विवाद हुए हैं। किन्तु वास्तविक तस्वीर से- "वही ढाक व तीन पात" वाली कहावत सच प्रतीत होती है।

सन् 1991 की जनगणना के अनुसार भारत में महिलाओं की जनसंख्या 40.63 करोड़ है जो कुल जनसंख्या का 38.17 प्रतिशत भाग है। महिलाओं में भी श्रमिक महिलाएं एक ऐसा वर्ग है जो भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार स्तम्भ होते हुए विकास की सभी अवस्थाओं से दूर फटेहाल और बर्बर जिन्दगी जीने को मजबूर हैं। भारत में महिला मजदूरों की कुल संख्या लगभग साढ़े छह करोड़ है।

इसमें से 60 प्रतिशत महिला श्रमिक ग्रामीण क्षेत्रों में लगी हैं जिसका 75 प्रतिशत भाग सिर्फ कृषि क्षेत्रों से जुड़ा है और 40 प्रतिशत महिला श्रमिक शहरों, कस्बों एवं औद्योगिक क्षेत्रों में लगी हैं। इस प्रकार हमारे समाज का इतना महत्वपूर्ण अंग आज तक हाशिये पर है और सबको जीवन देने वाली खुद दाने-दाने को मोहताज है। यदि इन महिला श्रमिकों की भागीदारी न हो तो भारतीय अर्थव्यवस्था और खासकर ग्रामीण अर्थव्यवस्था असंतुलित हो जाएगी। दोहरी-तिहरी भूमिका निभाने वाली भारतीय श्रमिक महिलाएं एक साथ घर की देख-रेख, बच्चों का लालन-पालन, खाना पकाने, पानी लाने, ईंधन आदि की व्यवस्था करने के साथ मजदूरी करने का अदम्य साहस - भरा कार्य करती है। फिर भी इनका जीवन काफी दयनीय एवं नारकीय बना हुआ है।

महिलाओं की समस्याएं

भारतीय महिला मजदूरों का सारा जीवन ही समस्याओं का एक पुलिन्दा है, जहां पेट में अनाज नहीं, छाती में दूध नहीं, नखों में खून नहीं। भयंकर बेरोजगारी, मानसिक तनाव, अभाव, पीड़ा, गन्दगी, बीमारी कुपोषण, पलायन, विस्थापन और सबसे बढ़कर यौन अत्याचार आदि अनगिनत समस्याओं के जाल में फंसा है भारत का यह अभिशप्त वर्ग। ये महिलाएं आज भी परतंत्र हैं, क्योंकि पूंजी की सत्ता पर आधारित समाज में जहां मेहनतकश जनता गरीबी में जी रही हो और मुट्ठी भर अमीर लोग दूसरों की कमाई पर पल रहे हों, सच्ची और असली स्वतंत्रता हो ही नहीं सकती।

भारतीय महिला श्रमिकों को घर और बाहर कुल मिलाकर 16 से 18 घंटे प्रतिदिन कार्य करना पड़ता है फिर भी सर्वत्र अपेक्षित रहती हैं।

पुरुषों की अपेक्षा हीन समझी जाने वाली इन महिला मजदूरों को महानगरों में कमरतोड़ मेहनत करने पर भी मुश्किल से 20-25 रुपये मिलते हैं। कुछ महिलाओं को तो मात्र 15-20 रुपयो से ही संतोष करना पड़ता है। इसी प्रकार काम से निकाले जाने का भय दिखलाकर इस महिला वर्ग से निर्धारित समय से अधिक कार्य भी लिया जाता है।

ग्रामीण महिला मजदूरों की जिन्दगी तो और कठिन होती है। उसे सालों काम नहीं मिलता है। फलतः पारिवारिक बोझ कम करने के लोभ से शहर एवं कस्बों की ओर पलायन करती है, जहां इसे असुरक्षा एवं मानसिक तनाव में जीना पड़ता है। न तो इनमें

संगठन होता है और न ही शिक्षा। फलत: बोनस एवं ''मातृत्व लाभ'' से भी वंचित होना पड़ता है। शहर हो या कस्बा या देहात इनकी गरीबी इनका पीछा नहीं छोड़ती है। पैसा बचाने के खातिर अपना पेट काटती है। इससे कुपोषण का शिकार होती हैं। गंदी बस्तियों एवं बजबजाती नालियों के किनारे झोपड़ियों में दिन गुजारती है। इस प्रकार कुपोषण और बीमारी का शिकार होकर अल्पायु में ही बूढ़ी हो जाती है।

आदिवासी महिला मजदूरों की दशा तो और शोचनीय है। ये स्त्रियां काफी गरीब होती है। जंगलों पर सरकारी नियंत्रण एवं अवैध कटाई ने इनके जीवन में जहर घोला है। ठेकेदारों का बोल-बाला हुआ और इन पर अत्याचार बढ़े हैं। बड़ी मुश्किल से ये स्त्रियां जंगली उपज, तेंदू पत्ता, चिरौंजी, इमली, हर्र, बहेरा, फूलबहरी आदि एकत्र करती हैं जो व्यापारियों एवं ठेकेदारों द्वारा मिट्टी के भाव खरीदकर मनमाना लाभ कमाया जाता है। औद्योगिक क्षेत्रों में आजकल आदिवासी महिला मजदूरों के यौन-शौषण की बर्बर घटनाएं तेजी से बढ़ रही है।

प्राय: सभी श्रेणियों की महिला-मजदूरों में शिक्षा और संगठन का घोर अभाव है। अशिक्षा इनके जीवन का सबसे भयंकर अभिशाप है जो एक और उसे अन्धविश्वास के भंवर में डूबोए रखती है तो दूसरी ओर किसी भी कल्याणकारी योजनाओं, कानूनों और अधिकारों की जानकारी तक प्राप्त होने से महरूम कर देती है। संगठन और कुशल नेतृत्व के अभाव ने तो इनके जीवन को और दुखद बनाया है।

समस्याओं का समाधान

भारतीय महिला मजदूरों की समस्याओं के निदान हेतु अभी तक कोई व्यावहारिक और सार्थक कोशिश नही की गई है और यही कारण है कि समाज के सभी वर्गों की जीवन देने वाली, समस्त आर्थिक विकास की प्रक्रियाओं को गति देने वाली तथा अपना खून - पसीना एक कर देने वाली महिला मजदूर सर्वाधिक अपेक्षित, पीड़ित एवं शोषित नजर आती है। अब भी होश में आने का समय है। इनकी दशा सुधारने हेतु ठोस कार्यक्रम एवं व्यावहारिक पहल की आवश्यकता है जिससे उनकी जिन्दगी को भी विकास की रौशनी से रौशन किया जा सके। इस दिशा में सहकारिता की भूमिका की प्रबल सम्भावना है।

महिलाओं को संगठित किया जाना जरूरी

सर्वप्रथम भारतीय महिला मजदूरों को संगठित करने की आवश्यकता है। चूंकि ये महिला श्रमिक अभी तक संगठित नहीं हो पायी हैं और जो कुछ संगठित हैं भी उसमें कुशल नेतृत्व का सर्वथा अभाव है। ग्रामीण महिला मजदूरों में तो संगठन नाम की कोई चीज है ही नही। इस दिशा में गांव, पंचायत एवं ब्लॉक स्तर पर महिला मजदूरों की सहकारी समितियां बनायी जानी चाहिए। इसी प्रकार की सहकारी समितियां शहरों, कस्बों, एवं औद्योगिक क्षेत्रों की महिला, मजदूरों के बीच बनायी जा सकती है। इसी अनुरुप विभिन्न स्तरों पर जागृति शिविर लगाकर इसे बतलाया जाना चाहिए कि ''वर्गीय सत्ता की सुनियोजित अपसंस्कृति का मुकाबला सुनियोजित वर्गीय संघटन से ही संभव है।''

शिक्षित किया जाना चाहिए

शिक्षा से वंचित इन महिला मजदूरों को साक्षर बनाकर पढ़ने-लिखने के योग्य बनाया जाना चाहिए। यह कार्य ग्रामीण पंचायत एवं ब्लॉक स्तर पर महिला मजदूर कताई, बुनाई एवं सिलाई सहकारी समितियों एवं महिला प्रौढ़ शिक्षा एवं अनौपचारिक शिक्षा को विस्तृत एवं बहुआयामी बनाकर, स्वैच्छिक संगठनों एवं राष्ट्रीय सेवा योजनाओं के युवकों को प्रोत्साहित करके इस पुनीत कार्य को अमल में लाया जा सकता है। जागरुकता शिविरों के माध्यम से भी महिला मजदूरों को साक्षर बनाने एवं शिक्षित करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। उन्हें बताया जाना चाहिए कि शिक्षा वह उपकरण है जो उनकी जिन्दगी में नया रंग भर सकता है। उन्हें नियम-कानून की जानकारी दी जानी चाहिए तथा जनसंख्या नियंत्रण के महत्व एवं उपाय और स्वच्छता एवं सफाई के संबंध में भी बताया जाना चाहिए।

ग्रामीण महिला मजदूरों की दशा सुधारने के लिए ''मातृत्व लाभ'' का प्रावधान ग्रामीण क्षेत्रों में भी लागू किया जाना चाहिए। इसके लिए सरकार स्वैच्छिक संगठनों का सहयोग ले सकती है और इसको सख्ती से व्यावहारिक रुप दिया जा सकता है। इस कदम से महिला श्रमिकों के स्वास्थ्य एवं बच्चों के पालन-पोषण की स्थिति में सुधार निश्चित है।

ग्रामीण क्षेत्रों से पलायन रोका जाना चाहिए

ग्रामीण महिला मजदूरों को ग्रामीण क्षेत्रों से पलायन करने एवं विस्थापित होने से रोकना होगा। उन्हें वहीं स्वाबलम्बी बनाकर विकास की दिशा में अग्रसर करना होगा। इसके लिए इन्हें लघु एवं कुटीर उद्योगों को चलाने के लिए प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया जा सकता है, ताकि कृषि कार्य एवं अन्य मजदूरी के कार्यों से निवृत्त होकर फुर्सत के समय अतिरिक्त उपार्जन कर अपनी

माली हालत सुधार सकें। इन्हें कुटीर उद्योग चलाने के लिए प्राथमिकता के तौर पर सभी गांव एवं पंचायत स्तर पर ग्रामीण महिला खेतिहर मजदूर सहकारी सपितियां तथा ग्रामीण महिला मजदूर सहकारी समितियां गठित की जानी चाहिए। इन्हें उद्योग-धन्धों में लगाते समय इनकी जन्मजात कुशलता एवं विभिन्न क्षेत्रों में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों पर विशेष ध्यान देना होगा। जैसे बांस बहुल क्षेत्रों की महिला मजदूरों को बासकेटरी उद्योग में, कुश और खड़ वाले क्षेत्र में चटाई एवं पटिया के धन्धों में लगाना चाहिए। इसी प्रकार बीड़ी बनाने वाली श्रमिक महिलाओं को सहकारिता के माध्यम से सस्ते मूल्यों पर तेंदूपत्ता, तम्बाकू, धागा आदि कच्चा माल उपलब्ध कराकर इन्हें मजदूर से मालिक बनने का गौरव दिलाया जा सकता है। इसी प्रकार अगरबत्ती, मोमबत्ती, दियासलाई, पोलीथीन, पापड़, अचार, सिलाई-बुनाई, कशीदाकारी, मूर्ति, चित्रकारी, कपड़ों की छपाई-रंगाई आदि क्षेत्रों में महिला मजदूरों की सहकारी समितियां बनाकर इनकी दशा सुधारी जा सकती है।

सहकारी समितियों से सहायता

महिला मजदूरों की ग्रामीण एवं कस्बाई सहकारी समितियों का प्रदेश स्तर पर एक शीर्ष संस्था गठित की जानी चाहिए जो ग्रामीण महिला मजदूर सहकारी समितियों एवं अन्य महिला मजदूर सहकारी समितियों को आवश्यकतानुसार वित्त, शिक्षा एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था करें एवं समुचित मार्गदर्शन दें।

महिला मजदूरों की सहकारी समितियों की वित्तीय कठिनाइयों को दूर करने के लिए समय-समय पर केन्द्र व राज्य सरकार द्वारा आवश्यकतानुसार अनुदान दिया जाना चाहिए। ग्राम सभाओं और पंचायतों द्वारा इन समितियों को उचित संरक्षण मिलना चाहिए। इसी प्रकार के शिक्षण, प्रशिक्षण, एवं सहयोगी-धन्धों से शहरी एवं कस्बाई क्षेत्रों की महिला मजदूरों को जोड़कर उनकी दशा सुधारी जा सकती है।

महिला मजदूरों के साथ शोषण एवं अत्याचार के मामलों की सुनवाई एवं त्वरित कार्रवाई हेतु अलग ट्रिब्यूनल की स्थापना की जानी चाहिए। ऊपर सुझाये गये बिन्दुओं पर अगर ईमानदार और सार्थक पहल की जाए तो भारतीय महिला मजदूरों की दशा में सुधार निश्चित है तथा उनके अभावग्रस्त और त्रासद जिन्दगी में आशा की नई किरण फूटना तय है। केवल आवश्यकता है दृढ़ निश्चय एवं ईमानदार कोशिश की जिससे ठोस कार्यक्रमों को अमली जामा पहनाया जा सके।

द्वारा : श्री बासुदेव महतो
वनस्पति विज्ञान विभाग
साइन्स कालेज कैम्पस
पटना - 800 005

पृष्ठ 27 का शेष

राष्ट्रीय कार्यक्रम आपरेशन फ्लड-तीन (1987-92) के तीसरे चरण में मिल्कफैड ने 80 करोड़ रुपये की अनुमानित लागत से एक योजना तैयार की है। दूध के संसाधन एवं विपणन की बुनियादी सुविधाओं का और विस्तार किया जा रहा है ताकि इस योजना के अंत तक प्रतिदिन 1550 लीटर दूध का उद्योगों में प्रयोग किया जा सके। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए 'आनंद पद्धति' पर आधारित ग्राम स्तर की 7080 सहकारी समितियां बनाई जा रही हैं। दुधारु पशुओं की उत्पादकता में वृद्धि करने के लिए वैज्ञानिक आधार पर संकर नस्लें तैयार करने के लिए सेवाएं प्रदान की जा रही हैं। व्यापक स्तर पर बुनियादी सेवाओं एवं सुविधाओं का योजनाबद्ध ढंग से विकास किया जा रहा है ताकि यह राज्य इस राष्ट्रीय कार्यक्रम में अग्रणी राज्यों में से एक हो।

साभार

पत्र सूचना कार्यालय

पर्यावरण प्रदूषण

आखिर इस दर्द की दवा क्या है ?

हरि विश्नोई

हवा, पानी और वातावरण की समस्या केवल शहरों तक ही सीमित नहीं है, हमारे गांव, खेत और खलिहानों में भी सकट गहरा रहा है। प्रतिवर्ष भूमि में खारापन बढ़ रहा है। बाढ़ के कारण बढ़ता भू-क्षरण चिन्ता का विषय हो गया है। वनों के कटाव के कारण अच्छी खासी भूमि बड़े पैमाने पर रेगिस्तान में बदलती जा रही है। यह तथ्य विश्व भूमि कृषि संगठन के महानिदेशक ने भी स्वीकारा है। ये समस्याएं विश्वव्यापी होती चली जा रही हैं। दिनों-दिन बढ़ती जनसंख्या को देखते हुए अन्न की पैदावार में वृद्धि को निरन्तर बनाए रखना आज के समय बड़ी जरूरत हो गई है।

भूख और गरीबी के विरुद्ध संघर्ष के लिए खाद्य एवं कृषि संगठन प्रति वर्ष एक विषय चुनता है। जिस पर बहस और प्रयास किए जाते हैं। विश्व खाद्य दिवस पर दुनिया का ध्यान खींचने के लिए विषय चुना गया था ''खाद्य और पर्यावरण''। दिन पर दिन आबादी तेजी के साथ बढ़ती जा रही है। परिणामस्वरूप मिट्‌टी, पानी और बयार पर अत्याचार बढ़ रहे हैं। साथ ही साथ बढ़ता हुआ औद्योगिकीकरण ऊपर से आग में घी का काम कर रहा है। अत: चुनौतियों की पहचान कर संयुक्त प्रयास किये जाने बहुत आवश्यक हैं।

एक अनुमान के अनुसार विश्व में प्रतिवर्ष 115 लाख हैक्टेयर से भी अधिक भूमि से हरियाली का सफाया हो जाता है। बारिश और सैलाब से ढाई हजार करोड़ टन मिट्‌टी बेकार हो जाती है। दूसरी तरफ असिंचित सूखे क्षेत्रों में करीब साढ़े तीन सौ करोड़ हेक्टेयर भूमि को मरुस्थल निगल जाता है। खाद्य और कृषि संगठन के अनुसार 60 लाख हैक्टेयर कृषि योग्य भूमि प्रतिवर्ष रेतीली हो जाती है। यह सिलसिला खासतौर से विकासशील देशों में तेजी से बढ़ रहा है। जिस तेजी के साथ वनों का लोप हो रहा है उसी तेजी के साथ प्राय: हरियाली लगाने का काम नहीं होता। फलस्वरूप वन्य प्राणी बेघर और लुप्त होते जा रहे हैं। हमारे रहन-सहन के तरीके कृत्रिम और प्रकृति विरुद्ध हो गए हैं। वे आगे चलकर हमारे खाद्य और पर्यावरण दोनों के लिए निश्चय ही और नई समस्याएं खड़ी करेंगे।

कृषि उत्पादन में विविध प्रयासों के कारण वृद्धि हुई है। उन्नत बीज, सिंचाई, रासायनिक उर्वरक और खेती के आधुनिक तरीकों से काफी कुछ मदद मिली है। लेकिन पिछले 40 वर्षों में औद्योगीकरण जिस गति से हुआ है उसने पर्यावरण की सभी सीमाओं को लांघ दिया है। जहर उगलते कारखाने और कचरे के अम्बार, हवा-पानी को दूषित कर रहे हैं। नदी नालों का दिनों-दिन गन्दा होता जल हमारी फसलों को नुकसान पहुंचाता है। कीटनाशी रसायनों के अन्धाधुन्ध इस्तेमाल से क्या विषैली गैस, गर्मी और रोगों में वृद्धि नहीं हो रही है ? इस तरह के तमाम अनुत्तरित प्रश्नों ने आज हमें घेर रखा है। ओज़ोन की परत में छेद तथा तेजाबी बरसात की आशंका इस बात की चेतावनी है कि इस मुद्‌दे पर केवल चिन्ता या बहस करना ही काफी नहीं है, बल्कि हम सभी को कुछ करने के लिए कृतसंकल्प होना पड़ेगा। बढ़ती हुई आबादी के लिए आवास की समस्या को हल करने के लिए गांव, खेत, वन और नदी सब प्रभावित हो रहे हैं। रहने के लिए घर की तलाश में भटकती भीड़ के सामने आहार, निजी स्वच्छता और वातावरण का महत्त्व घटते--घटते बहुत कम हो जाता है। वस्तुस्थिति तो यह है कि सुरसा मुख की भांति फैलते उद्योगों को भारी मात्रा में कच्चा माल मिलना चाहिए और वह इस तरह दिया जा रहा है कि हमारे बहुत से प्राकृतिक स्रोतों का उससे तेजी से ह्रास हो रहा है। यह बात नहीं कि मंझोले और बड़े किसान इस बात से वाकिफ नहीं हैं कि उनके खेत की उर्वरा शक्ति घट रही है। इसलिए यह आवश्यक है कि ऐसे प्रयास किये जाएं जिनमें विकास की कीमत पर कम से कम विनाश की आशंका न हो। हर आम आदमी को अच्छा सस्ता और पौष्टिक खाद्य सुलभ हो, लेकिन इसके लिए इस बुनियादी शर्त पर भी ध्यान देना होगा कि हमारी खेती, पशुपालन, डेयरी, मत्स्य उत्पादन और वानिकी से अधिकतम उत्पादन लेने के लिए जो अन्धाधुन्ध प्रयास किये जा

रहे हैं, उनमें दूरगामी परिणामों की सोच भी शामिल हो ताकि भविष्य की बढ़ती मांग और पर्यावरण की समस्या से फिर निपटने के लिए कदम उठाए जा सकें। लेकिन उसके लिए यह जरूरी होगा कि हम जो कुछ कर सकते हैं वह हमें अवश्य ही करना होगा। इसके लिए कई तरीके अपनाने होंगे। यह ध्यान देना होगा कि कहीं हम अपने पर्यावरण को खराब तो नहीं कर रहे हैं। किस तरह हम अपने काम करने के ढंग से प्रदूषण को रोक सकते हैं। पर्यावरण का संरक्षण कर सकते हैं।

यदि समय रहते न चेता गया तो पर्यावरण संकट आगे हमारे खाद्य उत्पादन में गम्भीर चुनौतियां खड़ी कर देगा। खाद्य और कृषि संगठन के महानिदेशक डा0 एडवर्ड सोमा के अनुसार कटिबन्ध के वनों में हमारे खाने योग्य ऐसे 80 हजार पौधे हैं जो भोजन में इस्तेमाल किए जा सकते हैं। लेकिन उनको कोई नहीं उगाता। इस बात की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि जंगलों में अन्धा-धुन्ध कटान से इस तरह की अधिकांश अथवा समूची प्राकृतिक सम्पदा सदा के लिए लुप्त हो जाएगी। हम वनस्पति खाद्य के रूप में सिर्फ पालक, मेथी, मूली, शलजम और चन्द गिनी-चुनी चीजों को ही जानते हैं और इन्हें पाकर ही निहाल हो रहे हैं। किसी अनजानी किन्तु उपयोगी वस्तु का साक्षात्कार होते ही उसके महत्व और संरक्षण के प्रति रुचि बढ़ेगी। अत: इस ओर भी हमारे प्रकृति प्रेमियों, वन संरक्षकों और सामाजिक कार्यकर्ताओं को ध्यान देना चाहिए। सभी के लिए पर्याप्त भोजन की व्यवस्था के लिए केवल उनकी आय और रोजगार के अवसर बढ़ाना ही काफी नहीं है। बढ़ती हुई मंहगाई का फर्क जिन पर नहीं पड़ता ऐसे लोगों की संख्या ज्यादा से ज्यादा 10 प्रतिशत है। शेष 90 प्रतिशत मंहगाई के बोझ को अपने कन्धों पर ही ढो रहे हैं और इसी कारण बुरी तरह से त्रस्त हैं। उनके लिए सस्ते और अच्छे खाद्य पदार्थों का प्रबन्ध करने का प्रयास किया जा सकता है। क्योंकि जो कुछ उपलब्ध है उसकी मांग अधिक और उत्पादन कम होने के कारण उसका मूल्य बढ़ रहा है। क्या आने वाली पीढ़ी को हम सिर्फ वही सब आसमान को छूती कीमतों के साथ दे सकेगें ?

हरित क्रान्ति से मिली विजय पर आनन्दित होना स्वाभाविक है लेकिन तस्वीर का एक रुख यह भी है कि अगले दशक में आबादी एक अरब हो जाएगी और उसका भारी दबाव पानी तथा जमीन के संसाधनों पर पड़ेगा। दूसरी तरफ देश में ही बहुत बड़ा भू-भाग बंजर और कई तरह से खराब है। खादर, बीहड़ और जल प्लावित क्षेत्रों में लाखों हेक्टेयर भूमि दबी पड़ी है। अत: सामाजिक आर्थिक, परिवर्तन के साथ खाद्य और पर्यावरण के महत्वपूर्ण पहलुओं पर ध्यान देना होगा। और इस दिशा में भूमि में सुधार का काम शुरू करने में सरकारी मदद का इन्तजार किए बिना ही किसानों को खुद पहल करनी होगी। भारतीय किसान परिश्रमी हैं, आशावान हैं और बदलाव चाहते हैं।

यह बात सच है कि यदि आदमी चाहे तो सब कुछ हो सकता है और इसी बात का परिणाम है कि देश के अन्दर तराई क्षेत्र जैसे बहुत से इलाके हैं जहां एक वक्त में घना जंगल हुआ करता था। किन्तु आज वहां गेहूं और गन्ना आदि की फसलें लहरा रही है देशी बैलों की जगह ट्रैक्टर और उससे जुड़े कृषि यन्त्र दिखाई देते हैं। एक जमाना था जब हमारे गांव ताजी व स्वच्छ हवा के लिए अद्वितीय समझे जाते थे। लेकिन अब यहां भी धुआं, शोर तथा गन्दगी ने जीना मुश्किल कर रखा है। बढ़ते जनाधिक्य और गरीबी ने स्वच्छता एवं ग्रामीण क्षेत्रों के बीच की खाई को और चौड़ा किया है। यद्यपि कई गांवों में छप्पर वाली कच्ची झोपड़ियां पक्के मकानों में बदल गई हैं।

दस वर्ष पूर्व विश्व पर्यावरण एवं विकास आयोग की स्थापना की गई थी उसने दुनिया के तमाम देशों में रहने वालों से पूछा कि हवा, पानी और मिट्टी की खराब होती स्थिति पर उनकी क्या राय है। जबाव में बहुत सी महत्वपूर्ण बातें उभर कर सामने आईं। उनमें से एक यह भी है कि पूरी दुनिया की अर्थव्यवस्था पर्यावरण की कोमल पंखुड़ी पर निर्भर है। यदि उसे कुछ होता है तो हम सब दोषी हैं। इसलिए प्रलयकारी तांडव से बचने के लिए प्रयास करने होंगे। स्कूली बच्चों और युवाओं के संगठनों को किसी हद तक यह काम सौंपना होगा। हर गांव हर शहर में समूह बनाने होंगे, जो इस बात पर निगाह रखेंगे कि वायु, पृथ्वी और जल को कोई खराब तो नहीं कर रहा है और यदि कर रहा है तो उन्हें क्या करना है ?

पर्यावरण संकट से उपजे खतरे महज कोरी कल्पना नहीं है, बल्कि सच है। हजारों किस्मों की विषैली गैसें उद्योगों से निकले अपशिष्ट पदार्थ आज भी जीना दूभर कर रहे है और पृथ्वी की स्थिति खराब होती जा रही है।

वनों को कुल भौगोलिक क्षेत्र के एक तिहाई हिस्से तक पहुंचाने की बात यद्यपि हमारी राष्ट्रीय वन-नीति का एक हिस्सा है। लेकिन कृषि क्षेत्र में गहरी समझ रखने वालों का कहना है कि जमीन खेती की दृष्टि से बरबाद होती जा रही है। उनका सुझाव है कि बंजर जमीन का उपयोग जल्दी उगने वाले वृक्ष लगाकर किया जा सकता है। पिछले दशक में इस मामले को लेकर कई बड़े परिवर्तन हुए हैं। केन्द्र में वन और पर्यावरण के लिए पृथक

मन्त्रालय है। देश के विभिन्न इलाकों में करीब पांच सौ पर्यावरण निगरानी केन्द्र हैं। इसी प्रकार हवा पानी की शुद्धि की जांच के लिए भी विभिन्न संयन्त्र काम कर रहे हैं। सभी राज्यों में प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड भी हैं लेकिन सबके साथ एक बेहद जरूरी बात है जन-जागरण और जन सहयोग, क्योंकि इसके अभाव में प्रयासों की सफलता अधूरी ही रहेगी।

खेतीबाड़ी में लगे अधिकांश लोग आज भी पर्यावरण संकट के इस खतरे से अनभिज्ञ हैं। वे नहीं जानते कि उपजाऊ मिट्टी की ऊपरी परत को बिगाड़ने में सिर्फ चन्द मिनट और बनने में हजारों साल का लम्बा समय लगता है। यद्यपि हमारे देश में भू-संरक्षण के क्षेत्र में विभिन्न प्रयास चल रहे हैं लेकिन जब तब छोटे कृषकों की, मृदा परीक्षण के मामले में लापरवाही को दूर करने के संबंध में नए सिरे से कशमकश शुरू नहीं होगी, तब तक समस्या का निदान होना मुश्किल है। मिट्टी के अतिरिक्त कृषि की आधारभूत आवश्यकता है सिंचाई। हमारे देश में जल प्रबन्ध के क्षेत्र में तीव्र प्रयासों की आवश्यकता को नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता। इसमें एक ओर कमी है और दूसरी ओर बरबादी। इसलिए पानी की बचत बहुत कम हो पाती है। जमीन का पेट भरने के बाद भी अक्सर ट्यूबवैल और नहरों से बहाव जारी रहता है।

पानी के बाद कृषि कार्यों में नम्बर आता है रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशक दवाओं के अन्धाधुन्ध इस्तेमाल का। किसान यदि चाहे तो इन दोनों का सही और सन्तुलित मात्रा में इस्तेमाल करके प्रतिवर्ष काफी रुपया बचा सकते हैं। ऐसा करने से उन्हें प्राप्त होने वाला लाभ भी बढ़ेगा और नुकसान भी कम होगा। लेकिन निर्धारित मात्रा के स्थान पर अनुमान के सहारे चलना तो हमारी पुरानी आदत है। किन्तु इससे होने वाली हानियों से अवगत होना भी जरूरी है। लापरवाही बरतने पर कीटनाशी-विष, मानव शरीर और पर्यावरण दोनों के लिए नुकसानदायक होते हैं। उनसे प्रभावित खरपतवार का चारा यदि पशुओं के पेट में चला जाए तो उन्हें बीमार कर देता है। अत: आवश्यकता इस बात की है कि खाद्य उत्पादन बढ़ाने के ऐसे प्रयास किये जाएं कि जिनसे पर्यावरण न बिगड़े और सबको साफ हवा पानी मिलता रहे।

नाभकीय विस्फोटों से उपजे रेडियोधर्मी सक्रिय पदार्थ, महानगरों से बाहर बहता मलजल, औद्योगिक कचरा, मिट्टी में पड़े अप्रयुक्त कीटनाशी मिट्टी को प्रदूषित करते हैं। आखिर मिट्टी की भी अपनी सीमाएं होती हैं। गन्दगी नष्ट करने व उपजाऊ बनी रहने के लिए हमें उसमें क्रियाएं करनी होती हं। अत: नमी, ताप, और वायु का अनुकूल मात्रा का बना रहना जरूरी है।

मृदा वैज्ञानिकों का मत है कि मिट्टी में जैव अंश बढ़ाया जाना चाहिए। फसलों में कीड़े बीमारियां उगाने वाली खरपतवार तथा वायरस के बचाव हेतु विष पैदा करने वाली जीन तथा कीट प्रोटीन जीन तैयार की गई है। जैव प्रौद्योगिकी इन सफलताओं का इस्तेमाल खेतों में किया जाना चाहिए। अन्य कार्यों में इस्तेमाल और बढ़ती हुई जनसंख्या की प्रति व्यक्ति औसत जमीन और बिगड़ते हुए पर्यावरण से खाद्य उत्पादन में कमी होना स्वाभाविक है। अत: देश में भूमि एवं जल-संरक्षण उपाय एक अनिवार्य साधन के रूप में उसी समय स्वीकार कर लिये गये थे जब प्रथम पंचवर्षीय योजना प्रारम्भ की गई थी। भू-संरक्षण, उर्वरकता में कमी, जल-उपलब्धता आदि उद्देश्यों को लेकर कई कार्यक्रम चलाए गए थे। भूमि की उर्वरक शक्ति को ठीक-ठाक रखने के लिए आर्गेनिक खाद बहुत अच्छी मानी जाती है। शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में करोड़ों टन आर्गेनिक अवशेष उपलब्ध भी रहते हैं। लेकिन उनमें से दस फीसदी अवशेषों का उपयोग भी इस खाद के रूप में नहीं हो पाता।

भूमि, जल, मृदा, वनस्पति, पशु डेयरी और मत्स्य संसाधनों के सर्वोत्तम उपयोग से कृषि विकास की ऊंची दर प्राप्त करने तथा भारत में दूसरी हरित क्रान्ति लाने के लिए खाद्य संसाधनों क्षेत्र की भांति खाद्य-पर्यावरण की ओर भी ध्यान देना होगा। ताकि खेती और किसानों से लेकर पर्यावरण केन्द्रों तक सभी प्रयासों में सुगठित तालमेल हो, क्योंकि पिछले तीन दशकों में विश्व की खाद्य पैदावार बढ़कर दुगुनी तो हो गई है लेकिन फिर भी अभी दुनिया में करोड़ो लोग भूख की चपेट में है और दो वक्त पेट भरने की बात उनके लिए एक मुश्किल बनी हुई है। अपने देश में पिछले 40 वर्षों में खाद्यान्न का उत्पादन तीन गुना हो गया है लेकिन जिस प्रकार हरित क्रान्ति को पूर्वी क्षेत्रों में फैलाने, शुष्क भूमि वाले इलाकों तथा बंजर भूमि का विकास करने, बारानी खेती हेतु राष्ट्रीय परियोजना चलाने तथा तिलहन के लिए प्रौद्योगिकी मिशन बनाने के कदम उठाए गए इसी प्रकार खाद्य एवं पर्यावरण से जुड़े सवाल का हल ढूंढने के लिए कार्य योजना की और प्रभावी मुहिम की जरूरत है।

राष्ट्रीय भूमि उपयोग और संरक्षण बोर्ड द्वारा संसाधनों का प्रबन्ध विकास, योजना निर्माण, कृषि भूमि को अन्य उपयोगों में लाने से रोकना, वैज्ञानिक तरीकों से भू-उपयोग एवं संरक्षण को बढ़ावा देना तथा राज्यों में भूमि उपयोग बोर्डों में समन्वय स्थापित करने का कार्य किया जाता है। बोर्ड द्वारा प्रायोजित, हिमालय

पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं पर किए गए अध्ययन की भांति खाद्य और पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं पर भी अध्ययन किया जाए तो निश्चय ही कार्यवाही के लिए नए अवसर सामने आएंगे। विश्व बैंक की सहायता से स्थापित जल संरक्षण विकास परिषद् ने भी कुछ परियोजनाएं चलाई थीं जिनमें चुने हुए क्षेत्रों के अन्तर्गत वनों की सम्पत्ति पशुओं के अधिक चराने, भूमि को ठीक से काम में न लाने और सड़क निर्माण में लापरवाही जैसी गतिविधियों से पर्यावरण प्रणाली को और अधिक खराब होने से बचाया गया। आवश्यकतानुसार इस काम का और अधिक व्यापक क्षेत्र में किया जाना उचित होगा।

चौथी पंचवर्षीय योजना में खासकर पर्यावरण की विभिन्न समस्याओं पर सरकार का ध्यान गया था। फलस्वरूप विकास में पर्यावरण को सम्मिलित किया गया ताकि विकास के कारण पर्यावरण का नुकसान न हो। केन्द्र और राज्यों में पर्यावरण संरक्षण हेतु दो दर्जन से अधिक कानून बनाए गये हैं। जल प्रदूषण व नियन्त्रण बोर्ड, केन्द्रीय गंगा प्राधिकरण तथा बेकार भूमि विकास बोर्ड के अतिरिक्त अनेक संगठन मूल्यांकन, निगरानी नियन्त्रण और सर्वेक्षण आदि कार्यों में लगे हैं। लेकिन खाद्य की मूलाधार भूमि पर खनन, ताप, विद्युत और उद्योगीकरण की परियोजनाओं आदि से निरन्तर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। पर्यावरण सुरक्षा अधिनियम 1986 के अन्तर्गत सरकार के पास विभिन्न महत्वपूर्ण अधिकार हैं। अत: भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं एवं इच्छाओं को पूरा करने के लिए जीव मण्डल को बचाया जा सकता है। अत: अन्यथा प्रदूषण की बाढ़ पर्यावरण रूपी खेत को खाती रहेगी। जिसका परिणाम में खाद्य उत्पादन में गिरावट के रूप में भुगतना पड़ेगा और तब हम नि:सहाय, निरुपाय होंगे। अत: जरूरी है कि हम अभी से प्रयास शुरू करें। अन्यथा आने वाली पीढ़ी पर्यावरण संकट से बच नहीं सकती।

एच-88 शास्त्री नगर,
मेरठ - 250005

पृष्ठ 22 का शेष

उदासीनता के कारण ये संस्थाएं पूरा मुनाफा नहीं कमा पाती और न ही अपने सदस्यों को पूरी सेवाएं दे सकती हैं। इस समस्या के समाधान के लिए सहकारी क्षेत्र में कार्यरत कार्यकर्ताओं व प्रबंधकों के पर्याप्त प्रशिक्षण व सहकारी क्षेत्र में मानव संसाधनों के विकास की परम आवश्यकता है।

नई आर्थिक नीति और सहकारिता

दो वर्ष पूर्व आरम्भ की गई नई आर्थिक नीतियों का उद्देश्य उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि करना, प्रतिस्पर्धात्मक अर्थव्यवस्था का निर्माण करना और उत्पादन के साधनों को अनावश्यक नियंत्रणों से मुक्त करना है। इन नीतियों और सहकारिता की मूल भावना में कोई अन्तर विरोध नहीं, अपितु एक दूसरे की पूरकता की ही प्रधानता है। वस्तुत: नई आर्थिक नीति सहकारिता की ही भावना को खुले बाजार की व्यवस्था में लाने का प्रयास है और नई आर्थिक नीति सहकारी क्षेत्र के लिए भी उतनी ही लाभप्रद है जितनी निजी क्षेत्र की संस्थाओं के लिए। सहकारी संस्थाएं सदस्यों द्वारा ही उनके आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संचालित की जाती हैं। अत: यह आवश्यक है कि नई नीतियों का लाभ उठाकर सहकारी क्षेत्र में भी तकनीकी दक्षता और अपना अस्तित्व बनाए रखते हुए बाजार व्यवस्था के अन्तर्गत प्रतिस्पर्धा की भावना को बढ़ाया जाए। बाजार की मांग और आपूर्ति व्यवस्था में सहकारी क्षेत्र के विकास की असीमित सम्भावनाएं निहित हैं।

किन्तु यहां एक चेतावनी देना भी अनुपयुक्त न होगा कि नई आर्थिक नीतियों के अनुरूप देश की अन्य वित्तीय, व्यावसायिक एवं औद्योगिक नीतियों को भी नया रूप दिया जा रहा है। नई नीति में घाटे में चलने वाले सार्वजनिक क्षेत्र से धीरे धीरे मुक्त होने की चर्चा चल रही है। सहकारी क्षेत्र के मुक्ति की बात तो नहीं है, लेकिन नई नीति में इस क्षेत्र की भूमिका को कभी स्पष्ट नहीं किया गया है। वित्तीय क्षेत्र में सुधार की सिफारिशों के लिए गठित नरसिम्हम् समिति ने बैंकिंग व्यवस्था की जो सिफारिश की है, उसमें सहकारी बैंकों और सहकारी वित्त संस्थाओं के लिए कोई स्थान नहीं रखा गया है जो सहकारी आन्दोलन के मुख्य अंग है। सहकारी वित्त संस्थाओं का संकट सम्पूर्ण सहकारी क्षेत्र के लिए संकट का कारण बन जाता है। किन्हीं विशेष परिस्थितियों में उत्पन्न पूर्वाग्रहों के आधार पर लिए गए निर्णय से सहकारिता आन्दोलन और उसके साथ समग्र ग्रामीण विकास की अवधारणा खतरे में न पड़ जाए, इसलिए नई आर्थिक नीति में सहकारी क्षेत्र की भूमिका संबंधी नीति को स्पष्ट परिभाषित करना आवश्यक है।

विशेष संवाददाता-दैनिक हिन्दुस्तान
बी-7, प्रेस एन्कलेव, साकेत
नई दिल्ली - 110 017.

लघु एवं कुटीर उद्योग

✍ सुबह सिंह यादव

भारतीय अर्थव्यवस्था के बदलते हुए स्वरूप में लघु एवं कुटीर उद्योगों की अधिकाधिक स्थापना करना अत्यन्त आवश्यक होता जा रहा है। वैसे भी भारत के आर्थिक विकास में लघु एवं कुटीर उद्योगों को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। हमारी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था जो बहुत समय से कृषि आधारित रही है, हाल के दशकों में इससे कुछ हटती-सी प्रतीत हो रही है। चूंकि जनसंख्या के गुणोत्तर रूप से बढ़ती प्रवृति के कारण आने वाले वर्षों में और अधिक लोगों को कृषि क्षेत्र में खपाना संभव न हो सकेगा। अत: देश भर में औद्योगिक इकाइयों की स्थापना करना जहां एक ओर समय की मांग है, वहीं देश के भावी आर्थिक विकास को निर्धारित करने के लिए अनिवार्यता भी है।

भारतीय अर्थव्यवस्था के समक्ष बेकारी, गरीबी, बेरोजगारी, भुखमरी जैसी अनेक समस्याएं विकास में बाधाएं बन रही हैं। गांवों में रोजगार देने तथा लोगों की आय बढ़ाने की दृष्टि से कृषि के सहायक उद्योग धन्धों का समुचित विकास करना अत्यन्त आवश्यक है। आजकल निर्धनता-निवारण की दृष्टि से भी इसका महत्व बढ़ गया है। कृषि क्षेत्र पर पहले से ही इतना दबाव बना हुआ है कि इस क्षेत्र में भविष्य में और अधिक लोगों को नहीं लगाया जा सकता। चूंकि वर्तमान में भी ग्रामीण क्षेत्रों में एक औसतन परिवार में जितने बच्चे जन्म लेते हैं सभी अपने पैतृक व्यवसाय की ओर उन्मुख होकर रह जाते हैं, जिससे एक ओर परिवार के रहन-सहन के स्तर में गिरावट आती है, वहीं दूसरी ओर जोतों के उप-विभाजन एवं अपखण्डन से अनार्थिक एवं सीमान्त जोतों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। अत: सरकार को कृषि आधारित उद्योगों की स्थापना पर बल देकर कृषि पर बढ़ते श्रम भार को रोकना चाहिए।

वर्तमान में हमारे देश में लघु क्षेत्र में अति लघु इकाइयों का अनुपात लगभग 95 प्रतिशत है। हमारे देश में लघु इकाइयां परम्परागत लघु क्षेत्र व आधुनिक लघु उद्योग क्षेत्र दोनों में पायी जाती है। परम्परागत उद्योगों में खादी व ग्रामीण उद्योग आयोग के अनुसार खादी ग्रामीण उद्योग, हथकरघा, रेशम, दस्तकारी व नारियल जूट के उद्योग आते हैं तथा आधुनिक लघु उद्योगों में लघु उद्योग विकास संगठन के अनुसार पावरलूम, इन्जीनियरी, इलैक्ट्रानिक्स, रबड़, दवा आदि से संबंधित बहुत से लघु उद्योग आते हैं।

लघु एवं कुटीर उद्योगों का महत्व

भारत में श्रमाधिक्य है जबकि पूंजी का अभाव है, ऐसी दशा में कम पूंजी पर आधारित उद्योगों की स्थापना पर बल देना देश की विकास आवश्यकताओं के अनुरूप होगा। चूंकि बड़े उद्योगों की स्थापना में अधिक पूंजी की आवश्यकता होती है। अत: छोटे-छोटे उद्योगों की स्थापना से कम पूंजी के विनियोग से अधिक से अधिक श्रम को लगाना संभव हो सकेगा। देश के ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसे छोटे-छोटे उद्योगों की स्थापना करने से स्त्री-परुष श्रम का सदुपयोग संभव हो सकेगा। तुलनात्मक आंकड़ों से पता चलता है कि एक लाख रुपयों के विनियोजन से बड़ी इकाई में केवल 4 व्यक्तियों को, लघु इकाई में 20 से 25 व्यक्तियों को तथा ग्रामीण उद्योगों में 70 व्यक्तियों को रोजगार दिया जा सकता है। तेजी-मन्दी के दौर में बड़े उद्योगों में व्यापक रूप से बेरोजगारी फैलने की संभावना अधिक रहती है जबकि लघु एवं कुटीर अद्योगों में इस तरह के दौर नहीं आते।

कुटीर एवं लघु उद्योगों के विकास का महत्व इस दृष्टि से भी है कि इनके विकास में आर्थिक एवं सामाजिक समानता का वातावरण तैयार होता है। इनसे आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण होता है। आर्थिक शोषण की संभावनाएं कम हो जाती है। साथ ही गांव व शहर की बीच की आर्थिक खाई कम हो जाती है। इन उद्योगों का महत्व सुरक्षा की दृष्टि से भी है। यदि हमारे औद्योगिक प्रतिष्ठान कुछ ही शहरों तक सीमित होंगे तो शत्रु राष्ट्र हमें कभी भी भारी नुकसान पहुंचा सकता है। लेकिन यदि छोटे उद्योगों के रूप में यह शक्ति सारे देश में फैली हो तो हम आसानी से औद्योगिक दृष्टि से कमजोर नहीं हो सकते हैं। लघु एवं कुटीर उद्योगों में बने हुए माल की लागत चाहे ऊंची हो लेकिन इनका माल प्राय: उत्तम, टिकाऊ एवं कलापूर्ण ढंग का होता है। इन उद्योगों के उत्पादन को प्रोत्साहन देने से अनेक औद्योगिक समस्याओं से बचा जा सकता है। बड़े पैमाने के उद्योगों से

औद्योगिक क्षेत्रों में तालाबन्दी, हड़ताल, आवास की समस्या, गन्दी बस्तियों, औद्योगिक कचरे जैसी अनेक समस्याएं पैदा हो जाती है, लेकिन छोटे पैमाने के उद्योगों की स्थापना से ये समस्याएं या तो पैदा ही नहीं होती अथवा पैदा हो जायें तो गंभीर रूप धारण नहीं कर पातीं।

हमारे देश के विभिन्न भागों में उत्पादन प्रक्रिया में अनेक कलात्मक डिजाइन तैयार करने का कार्य किया जाता है। ऐसी प्रतिभाओं को संरक्षण एवं प्रोत्साहन देने के लिए इन छोटे एवं कुटीर उद्योगों की स्थापना करना अनिवार्य है अन्यथा कालान्तर में ये नष्ट हो जायेंगे। इनके विकास से ही हम देश की परम्परागत प्रतिभा एवं औद्योगिक दक्षता को बनाए रख सकते हैं। कुटीर एवं लघु उद्योगों की स्थापना एवं कार्य प्रणाली अत्यन्त सरल एवं सुगमता पूर्वक समझने योग्य होती है, जिससे साधारण पढ़ा लिखा व्यक्ति भी इन्हें सरलता से चला सकते हैं। ये उद्योग निर्यात संवर्द्धन व देश को आत्मनिर्भरता की ओर ले जाने में सहायक होते हैं। भारत में हथकरघे पर बना वस्त्र, दस्तकारी का सामान, नारियल के रेशे से बने वस्त्र तथा रेशमी वस्त्र जैसा सामान काफी मात्रा में विदेशों को भेजा जाता है। आर्थिक सर्वेक्षण 1991-92 के अनुसार लघु उद्योगों द्वारा निर्यातित माल का प्रत्यक्ष मूल्य 9100 करोड़ रुपये आंका गया है। भविष्य में भी इस क्षेत्र में निर्यात बढ़ाने की पर्याप्त संभावनाएं विद्यमान हैं। आजकल निर्धनता-उन्मूलन कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्रामीण व लघु उद्योगों के विकास पर अधिक जोर दिया जाने लगा है।

सातवीं योजना में लघु एवं ग्रामीण उद्योगों की स्थिति

सातवीं योजनावधि में लघु एवं कुटीर उद्योगों के तकनीकी विकास एवं आधुनीकीकरण करने की नीति पर विशेष बल दिया गया है। ऐसा संकेत इस तथ्य से मिलता है कि छठी योजना में इस मद पर 1945 करोड़ रुपये खर्च करने का प्रावधान किया गया था, जिसे सातवीं योजना में बढ़ाकर 2753 करोड़ रुपये कर दिया गया। सातवीं योजना में इन उद्योगों के विकास पर 3249 करोड़ रुपये व्यय किये गये जो 2753 करोड़ रुपये के लक्ष्य से अधिक रहे।

सातवीं योजना में लघु एवं ग्राम उद्योग क्षेत्र के निर्धारित सभी लक्ष्यों को 1989-90 में प्राप्त कर लिया गया। इस अवधि में उत्पादन 1,00,243 करोड़ रुपये (एक लाख करोड़ रुपये से अधिक) रोजगार की मात्रा 3.98 करोड़ व्यक्ति तथा निर्यात की राशि 7444 करोड़ पहुंचाने के लक्ष्य रखे गये। इन लक्ष्यों के मुकाबले उपलब्धि क्रमशः 1,14,314 करोड़ रुपये, 3.85 करोड़ व्यक्ति तथा 14806 करोड़ रुपये रही।

लघु एवं ग्रामीण उद्योगों के विकास की नीति के अन्तर्गत तकनीकी क्षमता बढ़ाना एवं औद्योगिकरण करना, वर्तमान क्षमताओं का अधिकतम उपयोग करना, घरेलू बाजार में इन उद्योगों द्वारा उत्पादित माल को संरक्षण देना, निर्यातों को प्रोत्साहन देना तथा श्रमिकों के कल्याण एवं बेहतर काम की दशाओं पर अधिक ध्यान केन्द्रित करना आदि तय किया गया। 6 अगस्त 1991 को सरकार ने पहली बार लघु, कुटीर एवं ग्राम उद्योगों के विकास के लिए पृथक से नई औद्योगिक नीति घोषित की। इसकी मुख्य बातें निम्न हैं :-

(1) लघु पैमाने की इकाइयों में बड़े औद्योगिक उपक्रम (देशी व विदेशी) इक्विटी में 24 प्रतिशत तक हिस्सा ले सकेंगे। इससे उनका योगदान लघु क्षेत्र में बढ़ सकेगा।

(2) अत्यन्त लघु क्षेत्र में प्लान्ट व मशीनरी में विनियोग की सीमा 2 लाख रुपये से बढ़ाकर 5 लाख रुपये कर दी गई है।

(3) लघु उद्योगों के बिलों के भुगतान की व्यवस्था के लिए कानून बनाया जायेगा। इससे बड़ी इकाइयों द्वारा भुगतान में होने वाला विलम्ब कम किया जा सकेगा और लघु इकाइयों की वित्तीय स्थिति में सुधार होगा।

(4) भारतीय लघु औद्योगिक विकास बैंक लघु उद्योगों के आधुनिकीकरण व तकनीकी विकास में मदद करेगा।

(5) हथकरघा व दस्तकारी क्षेत्र के लिए पहली बार एक कार्यक्रम अपनाया जायेगा जिससे जनता वस्त्र स्कीम के स्थान पर आधुनिकीकरण के लिए धन उपलब्ध कराया जायेगा।

(6) लघु उद्योगों की उत्पादकता एवं प्रतिस्पर्द्धात्मकता में सुधार के लिए लघु उद्योगों के विकास संगठन के अन्तर्गत एक 'निर्यात विकास केन्द्र' तथा एक 'टैक्नोलॉजी विकास प्रकोष्ठ' स्थापित किया जाएगा।

(7) लघु एवं टाइनी इकाइयों को स्वदेशी एवं आयातित कच्चे मालों के आबंटन में प्राथमिकता दी जाएगी तथा वितरण में समानता लाई जाएगी।

(8) राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम (NCDC) कपास उत्पादकों, कताई मिलों व जुलाहों की कताई मिलों को सीडमनी के रूप में अधिक सहायता देगा।

यह नीति सरकार की जुलाई, 1991 में घोषित औद्योगिक नीति व अन्य उदारीकरण की नीतियों से मेल खाती है। आशा की

जानी चाहिए कि इससे लघु क्षेत्र को प्रावैगिक व गतिमान होने में मदद मिलेगी।

सरकारी प्रयास (लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास के लिए)

लघु एवं कुटीर उद्योगों के व्यापक महत्व को दृष्टिगत रखते हुए सरकार द्वारा विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से अनेक उपाय किये गये। इसे इस तथ्य से स्पष्ट समझा जा सकता है कि जहां प्रथम पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण व लघु उद्योगों के विकास पर सार्वजनिक क्षेत्र में व्यय की राशि 42 करोड़ रुपये थी यही राशि सातवीं योजना में बढ़कर 3249 करोड़ रुपये हो गई। छोटे पैमाने के उद्योगों को बड़े उद्योगों की प्रतिस्पर्द्धा से बचाने के लिए वर्तमान में 836 मदों का उत्पादन पूर्णतया लघु पैमाने के उद्योगों के लिए रिजर्व किया गया है। लघु उद्योगों के विकास को सुनिश्चित करने के लिए सरकार ने स्वदेशी एवं विदेशी कच्चे माल के आवंटन में लघु उद्योगों को प्राथमिकता दे दी है। नई औद्योगिक नीति में स्पष्टतया इस बात पर भी बल दिया गया है कि लघु उद्योगों को प्राथमिकता देने के साथ वितरण की समानता का भी ध्यान रखा जाएगा।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही भारत सरकार लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास के लिए प्रयत्नशील है 1948 के औद्योगिक नीति संबंधी प्रस्ताव में भी लघु एवं कुटीर उद्योगों के महत्व को स्वीकार किया गया था। इनके समुचित विकास के लिए जिला उद्योग केन्द्र (DTCs) स्थापित किये गये। प्रथम योजना अवधि में अन्तर्राष्ट्रीय योजना दल के सुझावों के अनुसार चार प्रादेशिक लघु उद्योग-सेवा संस्थान स्थापित किए गए। 1955 में राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम की (MSIC) स्थापना करके इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम बढ़ाया गया। भारत सरकार ने प्रथम योजनावधि में ही सभी तरह के छोटे उद्योगों के विकास के लिए छह अखिल भारतीय बोर्ड भी स्थापित किए। ये बोर्ड हैं - अखिल भारतीय हथकरघा बोर्ड, अखिल भारतीय खादी एवं ग्रामोद्योग बोर्ड, नारियल रेशा बोर्ड, केन्द्रीय रेशम बोर्ड, अखिल भारतीय हस्तकला बोर्ड और लघु उद्योग बोर्ड। कुछ अन्य संगठन भी इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। इनमें औद्योगिक विस्तार सेवा, राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम लिमिटेड, लघु उद्योग सेवा संस्थाएं एवं औद्योगिक बस्तियां शामिल हैं।

लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास में निरन्तरता बनाये रखने के लिए सरकार विभिन्न प्रकार की वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए कई सरकारी एवं संस्थागत एजेन्सियों की सहायता ले रही है। राज्य वित्त निगम तथा लघु उद्योग निगम इन उद्योगों को जोखिम पूंजी प्रदान करते हैं, मध्यकालीन एवं दीर्घकालीन कर्ज के लिए राज्यों के उद्योग निदेशालय को अधिकृत किया गया है। अल्पकालीन पूंजी की व्यवस्था व्यापारिक बैंकों द्वारा की जा रही है, जबकि किश्तों की स्कीम के तहत राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम तथा लघु उद्योग विकास निगम से वित्त सुविधा प्राप्त की जा सकती है। लघु उद्योगों को सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक से भी वित्तीय सहायता मिलती है। अर्धशहरी व ग्रामीण क्षेत्रों में इन उद्योगों को प्रोत्साहन देने के लिए राज्य सरकारें जिला उद्योग केन्द्रों के कार्यक्रम के अन्तर्गत कर्ज के रूप में सीड/मार्जिन मुद्रा की सहायता देती है। यह स्कीम 50 हजार से कम जनसंख्या वाले क्षेत्रों के लिए लागू है।

सरकार ने देश भर में लघु उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए भारतीय औद्योगिक विकास बैंक के तहत 20 मई, 1986 को एक लघु उद्योग विकास कोष (SIDF) की स्थापना की थी। इस कोष से वित्तीय सहायता राज्य औद्योगिक विकास निगमों, व्यापारिक बैंकों और राज्य निगमों के माध्यम से प्रदान करने की व्यवस्था की गई। इस प्राप्त राशि का उपयोग केवल लघु एवं कुटीर उद्योगों के विस्तार, विकास, आधुनिकीकरण एवं पुनर्स्थापना के लिए किया जा सकेगा।

लघु उद्योगों के बढ़ते महत्व को दृष्टिगत रखते हुए सरकार ने 1989 में भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक की स्थापना करके एक महत्वपूर्ण काम किया। लघु उद्योगों के लिए अलग से बैंक की स्थापना की आवश्यकता बहुत समय से महसूस की जा रही थी। इस बैंक ने 2 अप्रैल, 1990 से अपना कार्य आरम्भ कर दिया। यह भारतीय औद्योगिक विकास बैंक का एक सहायक संस्थान बनाया गया। लघु विकास कोष तथा राष्ट्रीय इक्विटी कोष दोनों का दायित्व अब भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक को सौंप दिया गया है। यह बैंक मुख्यतया लघु उद्योगों का आधुनिकीकरण एवं तकनीकी विकास करने, घरेलू एवं विदेशी बाजार का विस्तार करने तथा महानगरों की ओर जनसंख्या के पलायन को रोकने के लिए रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने पर अपना ध्यान केन्द्रित करेगा।

योजनाकाल में ग्रामीण व लघु उद्योगों के विकास पर सार्वजनिक क्षेत्र में व्यय की गई राशि निम्न है:-

लघु एवं ग्रामीण उद्योगों के विकास पर सार्वजनिक क्षेत्र में व्यय की राशि

	(करोड़ रुपयों में)
प्रथम पंचवर्षीय योजना	42
द्वितीय पंचवर्षीय योजना	187

तृतीय पंचवर्षीय योजना	241
तीन वार्षिक योजनाएं (1966-69)	126
चतुर्थ पंचवर्षीय योजना	243
पंचम पंचवर्षीय योजना	593
वार्षिक योजना 1979-80	256
छठी योजना	1945
सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90)	3249
द्वि वार्षिक योजनाएं (1990-92)	2094
कुल	8976

स्रोत :- इकानोमिक सर्वे 1991-92, पीपी एस-45, एस-46, एस-48 व एस-50 (तृतीय योजना एवं बाद की अवधि लिए)

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि 1975 से 1991 तक की 16 वर्षों की अवधि में लघु एवं कुटीर उद्योगों ने सराहनीय प्रगति की है। 1974-75 में लघु उद्योग इकाइयों की संख्या 5 लाख से बढ़कर 1990-91 में 19.4 लाख अर्थात् लगभग चार गुना हो गई है। इसी अवधि के दौरान इन उद्योगों द्वारा उत्पादित माल का मूल्य (प्रचलित मूल्यों पर) लगभग 17 गुना हो गया और रोजगार 40.5 लाख व्यक्तियों से बढ़कर 124.3 लाख अर्थात् लगभग तिगुना हो गया।

लघु एवं कुटीर उद्योगों की समस्याएं

भारतीय अर्थव्यवस्था चूंकि कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था है, अत: लघु एवं कुटीर उद्योगों को अधिकांश कच्चे माल की आपूर्ति कृषि क्षेत्र से होती है। कृषि उत्पादन में अनिश्चितता के कारण इन उद्योगों को उचित किस्म का कच्चामाल उचित मूल्य पर एवं पर्याप्त मात्रा में नहीं मिल पाता। फलस्वरूप इन लघु औद्योगिक इकाइयों में उत्पादन क्षमता बुरी तरह प्रभावित होती है। दूसरा इन उद्योगों को दुर्लभ विदेशी कच्चामाल एवं कल पुर्जों को प्राप्त करने में अनेक कठिनाइयां उठानी पड़ती हैं। यदि इनकी आवश्यकताओं के अनुरूप उपकरण एवं कच्चामाल उपलब्ध हो जाए तो इतनी ऊंची कीमत चुकानी पड़ती है जिससे इनकी आर्थिक स्थिति डांवाडोल होने लगती है। उदाहरणार्थ गैर-इन्जीनियरिंग इकाइयों को प्राय: इस्पात की कमी का सामना करना पड़ता है। भारत में लघु एवं कुटीर उद्योगों के सम्मुख सबसे अहम समस्या पूंजी का अभाव है। छोटे उद्यमकर्ताओं को औजार एवं मशीनें खरीदने हेतु लम्बी अवधि के लिए पर्याप्त पूंजी की आवश्यकता होती है। यह राशि उन्हें उचित समय पर एवं सस्ती ब्याज दरों पर उपलब्ध नहीं होती।

बिक्री एवं प्रभावी कर संबंधी कठिनाई भी इन उद्योगों के विकासमार्ग में एक अवरोध है। आधुनिकीकरण की बढ़ती प्रवृति के कारण इन उद्योगों द्वारा अत्याधिक माल की मांग दिनोंदिन घटती जा रही है। मांग में कमी का एक दूसरा कारण भारत में लोगों की क्रयशक्ति का कम होना है। विदेशों में इन उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं का निर्यात बढ़ाने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। मांग में कमी का एक अन्य कारण इन उद्योगों में लागत का ऊंचा होना है जिससे इन वस्तुओं की कीमतें बहुत ऊंची हो जाती है। उल्लेखनीय है कि हमारे देश में लघु एवं कुटीर उद्योगों के साथ एक जैसी नीति नहीं अपनाई जा रही।

छोटे पैमाने की इकाइयों को अपने माल का भुगतान समय पर नहीं मिलने पर काफी वित्तीय कठिनाई का सामना करना पड़ता है। कभी कभी निर्मित माल का स्टॉक जमा हो जाने पर इनकी कठिनाई और बढ़ जाती है। भुगतान में हुए विलम्ब के कारण इन्हें कच्चे माल को खरीदने में अनावश्यक देरी हो जाती है। कभी-कभी को माल के अभाव में उद्योग बंद भी करना पड़ता है। इनके अलावा नये यंत्रों तथा डिजाइनों के लिए अनुसंधान की कमी, यातायात के साधनों का अभाव प्रबन्धकीय दक्षता का अभाव इन्फ्रास्टाक्चर (पावर) की कमी व्यापारिक बैंको द्वारा ऊंची ब्याज की दरों का वसूलना आदि अनेक समस्याएं झेलनी पड़ती है।

हमारी अर्थव्यवस्था में लघु एवं कुटीर उद्योगों के व्यापक योगदान को दृष्टिगत रखते हुए इनसे संबंधित समस्याओं पर प्राथमिकता से ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97) में निर्धारित लक्ष्य

आठवीं योजना के लिए परिकल्पित लघु उद्योगों से संबंधित उत्पादन रोजगार तथा निर्यात के संबंध में वृद्धि दर सातवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान प्राप्त वृद्धि दरों की तुलना में कम है, हालांकि ग्राम तथा लघु उद्योग क्षेत्र के लिए कोई वृद्धि दर नहीं बताई गई है। इस योजना में औद्योगिक विकास में निजी पहलू पर अपेक्षाकृत अधिक बल दिया जाएगा।

प्रबंधक (आयोजना)
बैंक ऑफ बड़ौदा,
राजस्थान आंचलिक, जयपुर

बांस एक अति उपयोगी पौधा

✍ डा0 जयप्रकाश, एन0 राय व सूर्यप्रकाश मिश्र

बांस अपने बहु आयामी उपयोग के कारण विश्व का अत्यन्त उपयोगी पौधा माना जाता है। जापानी लोग बांस को अपना ''घनिष्ठ मित्र'' वियतनामी ''अपना भाई'' और चीनी इसे 'सन्यासी', 'मुनि', 'भिक्षु', आदि की संज्ञा देते है। बांस अन्य कई देशों में भी पूज्य है। हिन्दु पौराणिक कथाओं में बांस को 'बासुदेव' की तरह माना गया है तथा प्रत्येक शुभ कार्य के प्रारम्भ में बांस की छड़ी तथा विषम संख्या में मंडप आदि निर्मित होते हैं। यह एक जटिल काष्ठीय तने वाली बहु वर्षीय घास है। इसका तना गाठों पर जुड़ा तथा पर्वो पर खोखला जमीन के नीचे प्रकन्द से जुड़कर क्षेतिज जालिकावत् रूप से फैलता है। जड़े प्रकन्द की गांठों से उत्पन्न होती हैं और पौधे को मजबूती से जकड़े रहती हैं। तना प्रकन्द की गांठो से मिलकर तेजी से वृद्धि करता है।

प्राय: बांस सभी अयन वृत्तीय (भूमध्य रेखा से समान्तर 23° 28'' की दूरी पर खींचीं गयी काल्पनिक रेखा) प्रदेशों में पाया जाता है। लेकिन पूर्वी एशिया जैसे विशेषतया मानसूनी क्षेत्रों में बहुतायत से मिलता है। बांस की कुल ज्ञात पांच सौ प्रजातियों में से सौ केवल भारत में पायी जाती हैं। यह यूरोप और अन्टार्कटिका के अलावा सभी देशों में प्राकृतिक रूप से उगने वाला पौधा है। जो समुद्र तल से 4,000 मी0 की ऊंचाई तक के पहाड़ों पर पाया जाता है। मुख्य रूप से बांस नदी के किनारे नम घाटियों में झुन्ड में उगने वाली फसल है।

भारत में बांस पूर्वोत्तर राज्यों तथा पश्चिमी घाटों पर उगता है। यह लगभग एक करोड़ हेक्टेयर क्षेत्रफल जंगल में फैला है। भारत में लगभग 32 लाख टन बांस प्रति वर्ष पैदा होता है, जो कि विश्व के कुल उत्पादन का 32 प्रतिशत है।

आकारिकी :- बांस की विभिन्न जातियां जैसे अरून्डिनेरिया, बम्बूसा, डेन्ड्रोकलामस, जिगैन्तोक्लोवा, फिलोस्टैकिस आदि इसका प्रतिनिधित्व करती हैं। इसका तना बहुधा काष्ठीय कभी-कभी एक फुट व्यास और 100 फुट से अधिक लम्बा होता है, जो प्रत्येक गांठ पर शीथ से ढका होता है। पत्तियां छोटी व सवृन्त होती है। बांस विश्व का सबसे तेज बढ़ने वाला पौधा भी है। ऐसा अनुमान है कि जापान में बांस के कुछ पौधे 24 घंटे में 121 से0मी0 तक बढ़ जाते हैं। ऐसे विशाल पौधों को न तो आसानी से उखाड़ा जा सकता है और न ही तेज हवाओं और तूफानों से टूट सकते है। इसकी मजबूती व कठोरता की लोहे और इस्पात से भी तुलना करते हैं। इतने बड़े पौधे के फूल इतने छोटे होते है कि जैसे घास के फूल।

उपयोग :- पौधे के समस्त भाग को मनुष्य ऐतिहासिक काल के पूर्व से ही उपयोग में लाता रहा है। यह विभिन्न किस्म के उत्पादों को बनाने में प्रयोग किया जाता है। जैसे धनुष-बाण, पंखा, खिलौने, खंभे, वाद्य यन्त्र, छतरी व मछली पकड़ने के डन्डे। इससे टोकरी, ब्रुश आदि विभिन्न प्रकार की हाथ से बनी वस्तुएं भी बनती हैं। बांस का छप्पर व टटिया बनाने में भी उपयोग किया जाता है। पूर्वी भारत के किसी भी त्यौहार में पंडाल हेतु इसका प्रयोग अनिवार्य है। बांस के तने की अधिकांश उपज कागज उत्पादन में तथा लुग्दी बनाने में होती है। बांस का एक झुन्ड एक बार अच्छी तरह से स्थापित हो जाने के चार वर्ष बाद उपज देने लगता है जबकि काष्ठीय वृक्ष बीस वर्ष या अधिक समय में उपज देता है।

बांस का तना एशियाई मूल के लोगों के लिए भोजन का एक प्रमुख अंग भी है। ताइवान में प्रति दिन कई टन बांस खा[illegible] संसाधन फैक्ट्रियों में संसाधित किये जाते हैं, जापानी लोग [illegible] ऐसी प्रजातियों को खाने में उपयोग करते हैं, जिन पर कीड़ों का प्रकोप अधिक होता है। बांस के कोमल तने भारत वर्ष में भी स्वादिष्ट अचार के रूप में उपयोग किए जाते हैं। असम में पाए जाने वाले मूली बांस के गूदेदार दानों को कच्चा या पकाकर खाया जाता है।

बांस के पौधे भूक्षरण ग्रस्त क्षेत्रों में भू-अपरदान को रोकते हैं। बांस के प्रकन्द एक दूसरे से जकड़े होने के कारण भूमि की ऊपरी सतह को मजबूती से पकड़े रहते हैं। तेज ढलान वाले पर्वतीय क्षेत्रों और नदियों के किनारों पर बांस की रोपाई, बाढ़, भूचाल तथा भू-स्खलन के समय होने वाली हानि को बहुत कम कर देता है।

बांस की कुछ प्रमुख प्रजाजियों के उपयोग निम्नवत् हैं :-

1- अरून्डिनेरिया जाति

(क) अरून्डिनेरिया डेबिलिस – बरसात के समय चारे के रूप

में उपयोग होता है।

(ख) अरु फल्काटा - यह हुक्का तथा मछली पकड़ने के डन्डे बनाने में इस्तेमाल होता है।

(ग) अ0 रेसीमोसा - टोकरी, चटाई, और छप्पर के मकान बनाने में तथा चारे के लिए उपयोग में लाया जाता है।

2- बम्बूसा जाति :-

(क) ब0 अरून्डिनेसिया - यह घुमावदार तथा गाठों वाले तने के कारण दूसरे दर्जे का बांस होता है। जो कि लकड़ी के लट्ठों को बहाने व निर्माण कार्य में प्रयोग होता है। यह उत्तम किस्म का गूदा प्रदान करता है। इसका कोमल तना अचार व करी तथा पत्ती व टहनियां चारे के रू : में उपयोग में लायी जाती हैं। इसके दाने भी अनाज की कमी के समय खाये जाते हैं।

(ख) ब0 पाली मार्फा - मुख्यतया यह प्रजाति बांस की छत बनाने व कागज की लुग्दी बनाने के लिए संस्तुत की जाती है।

(ग) ब0 टुल्डा - निर्माण कार्यों, चटाई, टोकरी बनाने व नर्म कलियों की सब्जी के रूप में प्रयोग किया जाता है।

3- डेन्ड्रोकालामस जाति -

(क) डेन्ड्रोकालामास हामिल्टोनी - इसका कागज उद्योग के लिए व नये तने का सब्जी की तरह उपयोग होता है। तने के ज्यादा खोखले व पर्व लम्बे होने के कारण इसे प्रायः जल प्रवाह के लिए नाली के रूप मे उपयोग करते है।

(ख) डे0 स्ट्रिक्टस - यह बेड़ा, लाठी, मचान, चटाई, टोकरी, छड़ी, चारपाई शमियाने के खम्भे, पानी की नाली, मछली पकड़ने की छड़ी, वाद्य यंत्र, नाव का मस्तूल व सीढ़ी आदि बनाने के लिए तथा लुग्दी का कागज व रेयान बनाने में उपयोग होता है। पत्तियां चारे व तने सक्रिय चारकोल बनाने में काम आते हैं।

4. **जिगेन्टाक्लोवा मैक्रोस्टैकिया** - यह असम के खासी पहाड़ी पर पाया जाता है तथा चटाई व टोकरी बनाने के काम आता है।

5- फिल्लो स्टैकिस जाति :-

(क) फिल्लो स्टैकिस असामिका - इसके तने को छड़ी या लाठी की तरह से प्रयोग करते है।

(ख) फि0 बम्बूसोइडस - मकान के निर्माण, पुल, फर्नीचर छतरी के हत्थे व छड़ी के रूप में प्रयोग किया जाता है। जड़े ओजवर्धक दवा, कोमल डंठल परजीवी नाशक तथा तने की ऊपरी परत की खुरचन को तबासीर और बंसलोचन के रूप में आयुर्वेदिक दवाओं में उपयोग होता है।

शोध :-

पश्चिमी देशों में बांस के बढ़ते हुए बहु आयामी उपयोग के पश्चात इसका सकल उत्पादन और सम्बन्धित शोध कार्यों पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा है। यह पाया गया है कि बांस नम मृदा में आसानी से जीवित रह सकता है तथा कलम और बीज द्वारा प्रवर्धित किया जा सकता है। बांस उद्योग अधिकांश देशों में इसके कीट प्रकोप की ग्रहणशीलता के कारण विकसित नहीं हो पा रहा था। अब कई प्रतिरोधी प्रजातियां विकसित कर ली गई हैं जो कि पौधों की वृद्धि के लिए लाभकारी है। भारत सरकार के जैव- प्रौद्योगिकी विभाग ने ऊतक संवर्धन तकनीक के तहत बांस के सूक्ष्म प्रवर्धन से पौधे तैयार करने की परियोजना है। राष्ट्रीय रसायन प्रयोगशाला पुणे के भारतीय वैज्ञानिकों ने बांस की कुछ प्रजातियों में (30) तीस सप्ताह में पुष्पन कराने की सफलता प्राप्त कर ली है, जबकि प्राकृतिक तौर पर फूल आने का समय रोपाई से 30-120 वर्ष का होता है- अब बांस में फूल आने की प्रक्रिया को स्वेच्छा से दवाओं के प्रयोग से एक हफ्ते के अन्दर भी लाया जा सकता है। दो विभिन्न प्रजातियों में संकरण संभव होने से अब उत्तम संतति (तीव्र वृद्धि दर, कीट प्रतिरोधी व अधिक उपजाऊ) प्राप्त हो सकती है। ऊतक संवर्धन तकनीक के प्रयोग से बांस के बीज स्थायी तौर पर प्राप्त किए जा सकते है। इस तरह भारतीय वैज्ञानिक बांस की खेती में एक नये युग का सूत्रपात करने व बांस के कागज उद्योग में भी भारी मांग को पूरा करने में एक सफल प्रयास कर रहे है।

जापान में एटम बम गिराये जाने के बाद हिरोशिमा के कूड़े पर बांस के प्रथम प्रादुर्भाव ने ही एक आशा की किरण पैदा की थी, मनुष्य के नये जीवन की। भारतीय कागज उद्योग ने भी उत्सुकता पूर्वक शोध कार्य, जो कि राष्ट्रीय रसायन प्रयोगशाला पुणे ने बांस की तीन प्रजातियों को परख नली में लगभग 100 रसायनों के साथ अलग-अलग उद्देश्यों के लिए उगाया है, अपनाने की जिज्ञासा व्यक्त की है।

पर्यावरण विज्ञान विभाग

गो0 ब0 पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

पन्तनगर 263 145

सहकारी संस्थाओं में प्रबन्ध का व्यवसायीकरण

आर0 पी0 सेकड़ा

सी भी व्यवसाय की सफलता उसमें कार्य करने वाले व्यक्तियों की कुशलता व निपुणता पर आधारित होती है। यदि कार्य करने वाला व्यक्ति उस कार्य का जानकार या पूरी तरह जानकार नहीं है तो यह निश्चित है कि वह व्यवसाय सफल नहीं हो सकता जिस सीमा तक होना उसे चाहिए। सहकारी संस्थाएं भी इस संबंध में कोई अपवाद नहीं हो सकती।

भारत में सहकारी आन्दोलन का प्रादुर्भाव एवं विकास आन्दोलन के रुप में न होकर राज्य द्वारा प्रायोजिक कार्यक्रम होने के फलस्वरुप इसका पोषण भी राज्य द्वारा किया गया और इस पोषण हेतु देश के लगभग सभी राज्यों में सहकारी विभाग का निर्माण हुआ। चूंकि सहकारी आन्दोलन राज्य द्वारा एक प्रकार का प्रायोजित कार्यक्रम था। अत: सदस्यों ने इसमें एक आन्दोलन के रूप में भाग नहीं लिया और वे इसे सफल बनाने हेतु राज्य की ही जिम्मेदारी समझते रहे। इसके फलस्वरुप सहकारी संस्थाओं के प्रबन्ध हेतु सहकारी विभाग से प्रतिनियुक्ति की प्रथा आरम्भ हुई। प्रतिनियुक्ति की यह प्रथा प्रारम्भिक आवश्यकता के फलस्वरुप विकसित हुई जिसका अन्तोगत्वा उद्देश्य यह था कि जब तक उस संस्था के स्वयं के कार्मिक वहां के काम को संभालने योग्य नहीं होते तब तक विभाग से प्रतिनियुक्ति पर आये व्यक्ति संस्था के कार्य को संभालें और शनै:शनै: संस्था के अपने कार्मिकों को संस्था की जवाबदारी लेने हेतु तैयार करें। वस्तुत: ऐसा सभी संस्थाओं में हो नहीं पाया और आज अधिकतर राज्यों में प्रतिनियुक्ति पर सहकारी संस्थाओं में आये व्यक्तियों की संख्या बहुत अधिक है।

प्रबन्ध के व्यवसायीकरण की आवश्यकता

सहकारी संस्थाओं का जन्म छोटे संगठनों के रुप में हुआ, ऐसे में प्रारंभ में संस्था का निर्वाचित प्रतिनिधि ही उसका पूरा कार्य संभाल लेते थे। इसमें वह अपने सामान्य ज्ञान का उपयोग करता था, किन्तु अब ये संस्थाएं धीरे-धीरे बड़े रुप में विकसित होती गईं और ऐसे में यह महसूस किया जाने लगा कि संस्थाओं का प्रबंध उन व्याक्तियों द्वारा किया जाए जो वास्तव में प्रबन्ध के जानकार है। आज प्रबन्ध में विभिन्न "औजार" और तकनीकें विकसित हुई हैं। जिनकी सहायता से व्यवसाय के उद्देश्यों को प्रभावशाली प्रबन्ध द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। चूंकि सहकारी संस्थाएं भी एक व्यवसायिक संगठन है। अत: इसमें भी आज प्रबन्ध के व्यवसायीकरण की नितान्त आवश्यकता है।

अन्य व्यवसायिक संगठनों से प्रतिस्पर्धा

विभिन्न व्यवसायों में सहकारी संस्थाओं के अतिरिक्त अन्य प्रकार के निजी संगठन भी क्षेत्र में है। यह स्वाभाविक है कि जब विभिन्न प्रकार के संगठन एक ही व्यवसायिक क्षेत्र में हों तो उनमें प्रतिस्पर्धा जन्म ले और ऐसे संगठनों में जो संगठन सभी रुपों में सुदृढ़ होगा वही उस प्रतिस्पर्धा में टिक पायेगा। आज निजी संगठनों में पूरी तरह प्रबन्ध का व्यवसायीकरण हो गया है। इन संगठनों में प्रबन्ध के नए औजार व तकनीकों के जानकार इनका प्रबन्ध कर रहे हैं। अत: ऐसे में ये संगठन अधिक सुदृढ़ता से कार्य कर रहे हैं। जबकि सहकारी संस्थाओं में भी पूरी तरह प्रबन्ध का व्यवसायीकरण नहीं हो पाया। गुजरात आदि कुछ राज्यों में जहां सहकारी संस्थाओं में प्रबन्ध का व्यवसायीकरण कुछ हद तक है वहां ये संस्थाएं अच्छी तरह कार्य ही नहीं कर रही है, बल्कि उन्होंने निजी संगठनों को एक चुनौती भी दी है। लेकिन अधिकतर राज्यों की सहकारी संस्थाओं में अभी भी एक बहुत बड़ी संख्या में सहकारी विभाग से कार्मिक प्रतिनियुक्ति पर है जिनका स्थानान्तरण प्राय: एक प्रकार की संस्था से दूसरे प्रकार की संस्था में होता रहता है। इसके फलस्वरुप इन सहकारी संस्थाओं में प्रबन्ध का व्यवसायीकरण नहीं पाया और ये सहकारी संस्थाएं निजी संगठनों या अन्य प्रकार के संगठनों के सामने लड़खड़ाने लगी है।

प्रबन्ध का व्यवसायीकरण बनाम प्रतिनियुक्ति

विभिन्न राज्यों की अधिकतर सहकारी संस्थाओं में कार्मिकों के विभाग से प्रतिनियुक्ति की प्रथा प्रारम्भिक आवश्यकता के आधार पर प्रारम्भ हुई। इसमें यह बात अन्तर्निहित थी कि कुछ समय पश्चात इन सहकारी संस्थाओं के स्वयं के कार्मिक वहां के कार्यों को संभाल लेगें और विभाग से प्रतिनियुक्ति पर आए कार्मिक विभाग को वापिस लौट जायेगें। लेकिन ऐसा वास्तविक रूप से नहीं हो पाया। सहकारी संस्थाओं के विकास के साथ-साथ यह प्रथा और सुदृढ़ होती गई और इससे संस्था के स्वयं के

कार्मिक संस्था के कार्यों की जवाबदारी नहीं ले पाये। प्रतिनियुक्ति पर विभाग से आये कार्मिकों का स्थानान्तरण भी एक प्रकार की सहकारी संस्था से दूसरे प्रकार की सहकारी संस्था में होने लगा। जैसे -- सहकारी बैंक से विपणन संस्था में या विपणन संस्था से दुग्ध संस्था में। ये स्थानान्तरण निचले व मध्यम स्तर के कार्मिकों के ही नहीं है अपितु संस्था के मुख्य कार्यकारी के भी हैं। वस्तु स्थिति तो यह है कि मुख्य कार्यकारी के स्थानान्तरण अधिक हुए हैं और विभिन्न प्रकार की सहकारी संस्थाओं में हुए हैं इससे प्रबंध के व्यवसायीकरण की बात इन संस्थाओं में किसी भी स्तर पर नहीं हो पायी। प्रतिनियुक्ति की प्रथा सहकारी क्षेत्र में जो एक प्रारम्भिक आवश्यकता के रूप में जन्मी थी एक बोझ के रूप में बढ़ गई है। प्रतिनियुक्ति के औचित्य को यह कहकर उचित ठहराने का प्रयास किया जाता है कि विभिन्न सहकारी संस्थाओं में राज्य सरकार का पैसा लगा हुआ है। अतः इन संस्थाओं का प्रबन्ध सरकार अपने हाथ में रखना चाहती है। संस्थाओं में राज्य का पैसा होना एक अलग बात है। उसकी देख रेख के लिए सहकारी विभाग के पंजीयक को विभिन्न अधिकार दिये गये हैं, जिनकी सहायता से सहकारी संगठनों में राज्य सरकार के पैसे की सुरक्षा को सुनिश्चित किया जा सकता है। अतः सहकारी संस्थाओं में प्रबन्ध के व्यवसायीकरण हेतु प्रतिनियुक्ति की प्रथा को लम्बे समय तक चलाना न तो संगठन व सदस्यों के हित में है और न ही राज्य सरकार के हित में। राज्य सरकर का हित भी इसी में निहित है कि सहकारी संस्थाएं सफलतापूर्वक चलें और अपने क्षेत्र में सफल हों और यह तभी संभव है जबकि सहकारी सस्थाओं में प्रबन्ध का व्यवसायीकरण पूरी तरह किया जाए। सहकारी संस्थाओं में प्रतिनियुक्ति की प्रथा यदि एक साथ समाप्त नहीं की जा सकती तो संस्थाओं में प्रबन्ध के व्यवसायीकरण हेतु विभिन्न प्रकार की सहकारी संस्थाओं के लिए विभिन्न स्तरों पर काडर का निर्माण किया जाए। इससे प्रतिनियुक्तियों पर आये अधिकारियों का स्थानान्तरण एक प्रकार की सहकारी समितियों में ही एक स्तर पर ही होगा। इससे प्रबन्ध के व्यवसायीकरण को बहुत कुछ हद तक प्राप्त किया जा सकेगा।

प्रबन्ध का व्यवसायीकरण संचालन के स्तर पर

सहकारी संस्थाओं का नियंत्रण संस्था के संचालक मण्डल के हाथ में होता है जो लोकतांत्रिक पद्धति से संस्था के साधारण सदस्यों द्वारा एक निश्चित समय के लिए चुना जाता है। संचालक मण्डल के चुने हुए लोग साधारण सभा द्वारा निर्धारित की गयी नीति के अनुसार संस्था का संचालन करते हैं। वस्तुतः ये नीतियां भी संचालक मण्डल द्वारा ही तैयार की जाती है और साधारण सभा द्वारा उसे अनुमोदित कराया जाता है। वास्तव में संचालक मण्डल संस्था की वह धुरी है जिसके केन्द्र बिन्दु से संस्था का संचालन और नियंत्रण होता है। विभिन्न नीतियों और उनकी अनुपालना में संचालक मण्डल को यह भी देखना परम आवश्यक है कि संस्था पर लागू विभिन्न नियमों और निर्देशों का उल्लंघन तो नहीं हो रहा है। साथ ही संस्था के प्रभावशाली संचालन हेतु यह आवश्यक है कि संचालन मण्डल के सदस्य संस्था के उस व्यवसाय की सामान्य तकनीक को समझे जिनसे संचालन में उन्हें निर्णय लेने हैं। लोकतांत्रिक पद्धति से चुनाव होने के फलस्वरुप संचालक मण्डल की सदस्यता के अभ्यार्थी पर उक्त बातों को निर्वाचन की पूर्व शर्त के रूप में रोपित नहीं किया जा सकता। संस्था के बहुसंख्यक सदस्य जिन सदस्यों में अपना विश्वास व्यक्त करेंगे वे ही संचालक मण्डल के सदस्य के रूप में संस्था का संचालन करेंगे। ऐसे में यह बहुत आवश्यक है कि चुने गये संचालक मण्डल के सदस्य उक्त वर्णित योग्यताओं को अर्जित करें। अतः संचालक मण्डल के चुनाव के बाद उन्हें सौपे जा रहे कार्य को वे किस प्रकार भली भांति कर सकते हैं इसका ज्ञान उन्हें करवाया जाना आवश्यक है। इस हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जा सकते है।

उपसंहार

आज के प्रतिस्पर्धा के इस युग में जब कि विभिन्न बहुराष्ट्रीय कम्पनियां अपनी व्यवसायिक प्रबन्ध कुशलता के साथ प्रतियोगिता में डटी हुई है, यह आवश्यक है कि सहकारी संस्थाओं में भी प्रबन्ध का व्यवसायीकरण हो ताकि संस्थाएं भी प्रबन्ध की नवीन तकनीक का उपयोग कर संगठन के उद्देश्यों को प्रभावशाली रूप में प्राप्त कर सकें एवं व्यवसाय में विभिन्न प्रतियोगी संगठनों द्वारा दी जा रही चुनौतियों का सामना कर सकें। आज सहकारी संस्थाओं को जीवित रहने हेतु जो संघर्ष करना पड़ रहा है उसमें वे तब ही सफल हो सकती हैं जबकि उनमें प्रबन्ध का व्यवसायीकरण न केवल संस्था के प्रशासकीय स्तर पर हो बल्कि संचालन के स्तर पर भी इसका होना परम आवश्यक है।

संकाय सदस्य
सहकारी प्रबंध संस्थान, जयपुर

ग्रामीण महिला एवं बाल विकास : एक विवेचन

✍ प्रो0 गोपाल लाल

देश के ग्रार्मीण क्षेत्रों में महिला एवं बाल विकास कार्यक्रम सर्वप्रथम 1983 से प्रारम्भ किया गया था और आज यह कार्यक्रम देश के 240 जिलों में चलाया जा रहा है। देश के सम्पूर्ण जिलों में इस कार्यक्रम को लागू करने के लिए आठवीं योजना (1992-97) के दौरान प्रतिवर्ष 50 अतिरिक्त जिलों को भी शामिल करने का प्रस्ताव है। ग्रामीण महिलाओं में निरक्षरता, अज्ञानता, गरीबी, असंगठित रूप तथा दयनीय जीवन स्तर को ध्यान में रखते हुए यह कार्यक्रम गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाली ग्रामीण महिलाओं पर केन्द्रित किया गया है। इसका उद्देश्य ग्रामीण जनसंख्या के सबसे अधिक पिछड़े वर्ग को रोजगार के अवसर प्रदान कर उनके जीवन स्तर में वृद्धि करना है।

वर्ष 1987-88 में किये गए 43 वें राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के अनुसार कुल जनसंख्या में ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगार पुरुषों का प्रतिशत 2.2 तथा बेरोजगार महिलाओं का प्रतिशत 1.0 है। इससे स्पष्ट है कि पुरुषों की तुलना में महिलाएं कम बेरोजगार है। वे किसी न किसी आर्थिक घरेलू एवं पारिवारिक कार्यों में लगी रहती है। इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकांश कृषि व्यवसाय से जुड़ी मजदूरिनें अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों को सही ढंग से निभाने के लिए सजग ही नहीं रहती, बल्कि परिवार के प्रति समर्पण और त्याग की भावना भी पुरुषों की तुलना में अधिक रखती हैं। जैसे - बच्चों की परवरिश, पति की सेवा, पशुओं की देखभाल, चारे-पानी और ईंधन की व्यवस्था, चूल्हा-चौका आदि से उन्हें अपनी एवं बच्चों की सफाई तक के लिए भी फुर्सत नहीं मिल पाती। इन सब परिस्थितियों के कारण महिलाओं का विकास अवरूद्ध बना हुआ है, तथा वे गांवों में चलने वाले प्रौढ़-शिक्षा कार्यक्रम जैसी सुविधाओं से भी वंचित रह जाती हैं।

गरीबी का अभिशाप

वैसे तो गरीबी सम्पूर्ण मानव जाति के लिए अभिशाप है लेकिन महिलाओं के लिए तो यह शाप के समान है। ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली अनपढ़ और गरीब महिलाएं सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं का उपयोग नहीं कर पाती, अपने स्वास्थ्य के प्रति सजग नहीं रहती तथा वे तब तक लापरवाह बनी रहती है जब तक कि वे पूरी तरह रोगी नहीं हो जाती। आज मंहगाई के युग में कम घरेलू बजट और सीमित आर्थिक साधनों से घर चलाना कोई आसान बात नहीं रही।

एक राष्ट्रीय संस्था द्वारा किए गए अध्ययन का निष्कर्ष है कि ग्रामीण स्वास्थ्य सेवाओं का महिलाओं द्वारा कम ही इस्तेमाल किया जाता है और स्वास्थ्य केन्द्रों में पुरुष तथा महिला आगन्तुकों का अनुपात 5:1 है। ग्रामीण क्षेत्रों में उचित एवं वांछित स्वास्थ्य सेवाओं की पूर्ति का भी निरन्तर अभाव बना रहता है। इसकी एक खास वजह यह है कि गरीब देश अपने स्वास्थ्य बजट का 60 से 80 प्रतिशत तक शहरी अस्पतालों पर खर्च करते हैं जबकि भारत में 70 प्रतिशत आबादी गांवों में निवास करती है।

बढ़ती जनसंख्या :-

देश में बढ़ती जनसंख्या के कारण आर्थिक विकास का कोई खास लाभ नहीं हो रहा है क्योंकि आजादी के बाद 44 वर्षों में हुई महत्वपूर्ण प्रगति के लाभ जन-जन तक नहीं पहुंच पाये हैं। इस दृष्टि से एशियाई विकास बैंक ने जनसंख्या नियन्त्रण करने और स्वास्थ्य सेवाओं में वृद्धि की सिफारिश की है। दरअसल महिलाओं का आर्थिक विकास में सक्रिय योगदान प्राप्त करने के लिए पहले उनकी अन्तरंग भावनाओं को समझकर उनमें आत्म-चेतना पैदा करना जरुरी है।

महिलाओं की सुख-समृद्धि में वृद्धि हेतु उनको हर प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध करवाना अति आवश्यक है। स्त्री और पुरुष दोनों ही समाज के अभिन्न अंग हैं, पुरुषों की भांति महिलाओं की भी अपनी आकाक्षाएं, सुन्दर सपने, कार्य के प्रति लगाव और आगे बढ़ने की ललक है। अत: ग्रामीण पिछड़े इलाकों में स्वास्थ्य सेवाएं, साक्षरता अभियान, महिला लघु उद्योगों का संचालन कर उनकी आय में वृद्धि तथा रोजगार के अवसर सुलभ करवाये जा सकते हैं।

आठवीं योजना में ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली 8.4 करोड़ और शहर की गन्दी बस्तियों में रहने वाली 2.08 करोड़ महिलाओं की रोजगार उपलब्ध करवाने का लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए रोजगार और प्रशिक्षण सुविधाओं की आवश्यकता है। देश में विधवा महिलाओं की संख्या लगभग 2.75 करोड़ है। इसी प्रकार देश में 76 लाख कम उम्र की बच्चियां मजदूरी करके अपना

और अपने परिवार का पालन-पोषण करने को विवश है। अतः सरकार द्वारा अविलम्ब नवीन जनसंख्या नीति की घोषणा की जानी चाहिए तथा परिवार कल्याण कार्यक्रम की सफलता के लिए हर संभव प्रयास किया जाना जरुरी है। जनसंख्या नियन्त्रण के माध्यम से ही हमारी अनेक समस्याओं का निदान संभव है। कुछ राज्यों में महिलाओं के लिए कुछ कल्याणकारी योजनाएं शुरू की हैं। इनमें से कुछ योजनाएं निम्नलिखित हैं :-

राजस्थान में लोक जुम्बिश

ग्रामीण महिला एवं बाल विकास के लिए महिला साक्षरता में वृद्धि की आवश्यकता है, इस दिशा में राजस्थान में एक नया कदम "लोक-जुम्बिश" उठाया गया है। राजस्थान जैसे पिछड़े प्रदेश में लड़कियों की औसत उम्र केवल 16 वर्ष है तथा 90-95 प्रतिशत लड़कियां कुपोषण का शिकार हैं। राजस्थान में 60 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन करती है। साक्षरता की दृष्टि से भी राजस्थान बिहार को छोड़कर अन्य सभी राज्यों में पिछड़ा हुआ है तथा आबादी की दृष्टि से यह प्रान्त देश में नवें स्थान पर है। लेकिन सबसे अधिक चिन्ता की बात यह है कि प्रदेश में महिला साक्षरता की दर 15 से 20 प्रतिशत तक ही है अर्थात दस में से केवल दो महिलाएं ही साक्षर हैं।

अतः स्थिति को समझते हुए प्रदेश सरकार ने स्वीडन इन्टर-नेशनल डवलपमेन्ट एजेन्सी (सीडा) के सहयोग से प्रदेश भर के लगभग दो-तिहाई निरक्षरों के उज्जवल भविष्य को ध्यान में रखते हुए लोक-जुम्बिश परियोजना 1 अप्रैल 1992 से लागू की है। प्रदेश में ग्रामीण महिला एवं बाल विकास के क्षेत्र में भी यह एक महत्वपूर्ण परियोजना है जो देश के अन्य प्रान्तों के लिए भी अगुआ बन सकती है।

राजस्थान में इस योजना का प्रथम चरण 1 अप्रैल 1992 से 31 मार्च 1994 तथा द्वितीय चरण 1 अप्रैल 1994 से इस लक्ष्य की पूर्ण प्राप्ति तक निर्धारित किया गया है। प्रथम चरण के लिए 20 करोड़ रुपये एवं दोनों चरणों की अवधि के लिए कुल 600 करोड़ रुपये व्यय का प्रावधान है। योजना के माध्यम से प्रदेश के प्रत्येक गांव में ग्राम शिक्षा समिति और ग्राम शिक्षण केन्द्र तथा इनके अतिरिक्त भी आश्रम शाला, बालालय, महिला केन्द्र और महिला समूह आवश्यकतानुसार गठित किए जायेंगे। इस प्रकार यह योजना विशेषकर ग्रामीण महिलाओं और पिछड़ों को निरक्षरता के अभिशाप से छुटकारा दिलाने में वरदान साबित होगी। योजना की सफलता जन सहयोग और जन-आन्दोलन पर निर्भर करती है। इसलिए सभी से पूर्ण सहयोग की आशा और अपेक्षा है।

अन्तर्राष्ट्रीय विकास संस्था (आई. डी. ए.) से मदद

आई. डी. ए. से वर्ष 1991-95 के दौरान भारत का मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य कार्यक्रम में सुधार के लिए 21 करोड़ 45 लाख डालर का ऋण उपलब्ध होगा। यह कार्यक्रम साढ़े सात लाख बच्चों को साधारण बीमारियों से एवं एक लाख 70 हजार बच्चों को पोलियो से बचाने के लिए चलाया जायेगा। इन कार्यक्रमों तथा स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार से बच्चों की जीवित दर में वृद्धि और माताओं की मृत्युदर में कमी आएगी। देश में विश्व बैंक की 1150 करोड़ रुपयों की मातृत्व सुरक्षा एवं शिशु देखभाल योजना अगस्त 1992 से लागू है।

विश्व बैंक की "विकासशील देशों में रुख" नाम की रिपोर्ट के अनुसार भारत में गरीबी की रेखा से नीचे का जीवन बसर करने वाले लोगों का प्रतिशत 40 से घटकर 30 रह गया है तथा तीव्र आर्थिक प्रगति, गरीबी हटाओ कार्यक्रम तथा सामाजिक सेवाओं की उपलब्धता से गरीबी का प्रतिशत कम हुआ है। फिर भी भारतीय अर्थव्यवस्था पर निःसंदेह दबाव पड़ रहा है। लगातार विदेशी सहायता के बावजूद संरचनात्मक सुधारों का काम आसान नहीं है। हमें विकास के हर क्षेत्र में पहल करनी होगी और बुनियादी स्तर पर सम्पूर्ण आर्थिक ढांचे में परिवर्तन कर विश्व समुदाय के साथ कदम मिलाकर आगे बढ़ना होगा तथा मानव कल्याण में लगी संयुक्त राष्ट्र संघ की सहयोगी संस्थाओ का बराबर सहयोग लेना होगा। यहीं नहीं जनसंख्या नियन्त्रण को सर्वोच्च प्राथमिकता देनी होगी।

सन्तुलित आहार अति आवश्यक

बच्चों को विषाक्त भोजन जन्य रोगों से बचाने के लिए महिलाएं महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। लेकिन गरीबी एवं साधन सुविधाओं के अभाववश बच्चों को पौष्टिक एवं संतुलित आहार भी ठीक से उपलब्ध नहीं हो पाता और परिणामतः आहार एवं पोषण की कमी से बच्चे कमजोर एवं रोगी हो जाते है। इस प्रकार बच्चों में कुपोषण का सबसे बड़ा कारण आहार जन्य दस्त रोग है जिससे भयंकर रोग और कुपोषण भी हो जाता है। बच्चों को कुपोषण से बचाना अति आवश्यक है तथा स्वयं के एवं बच्चों के उत्तम स्वास्थ्य के लिए संतुलित आहार की जानकारी भी महिलाओं को अधिकाधिक प्रदान की जानी चाहिए।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने शिक्षा के व्यापक महत्व को देखते हुए वर्ष 1990 को अन्तर्राष्ट्रीय साक्षरता वर्ष घोषित किया था और साक्षरता वृद्धि के लिए 1990 को साक्षरता वर्ष के रूप में भी मनाया। इसी प्रकार वर्ष 1990 में ब्रुसेल्स में यूरोपीय गैर-सरकारी संगठनों की बैठक की एक रिपोर्ट में कहा गया "कि दुनिया की कुल आबादी में आधी महिलाएं हैं, जो दुनिया का दो तिहाई काम करती हैं, लेकिन उन्हें दुनिया की कुल आमदनी का दसवां हिस्सा और कुल संसाधनों का सौवां हिस्सा ही मिल पाता है।" यह स्थिति महिलाओं के शोषण एवं अन्याय की तरफ इशारा करती हैं।

विश्व बैंक की रिपोर्ट में 60 प्रतिशत भारतीय महिलाओं में खून की कमी पाई जाती है। इससे उनकी काम करने की क्षमता क्षीण हो जाती है। इस दृष्टि से महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए उनकी साक्षरता दर बढ़ानी होगी और उनके लिए स्वास्थ्य सुविधाएं मुहैया करानी होंगी तथा महिलाओं के साथ भेदभाव को समाप्त करना होगा क्योंकि महिलाएं देश की जनसंख्या का आधा हिस्सा हैं और उनके समग्र विकास से ही देश का सर्वांगीण विकास संभव है।

बाल विकास और एक बच्चा सिद्धान्त

देश की भावी पीढ़ी की निर्माता और रीढ़ कही जाने वाली महिलाएं शिशुओं की पालनहार ही नहीं बल्कि प्रथम गुरु और मार्ग निर्देशिका भी हैं। आज विश्व में सबसे अधिक जनसंख्या वाले देश चीन में बच्चों को जन्म देने योग्य महिलाओं के लिए सिर्फ एक ही बच्चा पैदा करने का कानून बना दिया गया है। यही कारण है कि भारत की तुलना में, चीन में जनसंख्या वृद्धि की दर कम है और फ्रांस ने तो परिवार नियोजन के माध्यम से जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण स्थापित कर लिया है। इसलिए प्रगति की दौड़ में आगे बढ़ने के लिए हमें चीन की भांति "एक परिवार एक बच्चा सिद्धान्त" को नि:संकोच अपना लेना चाहिए क्योंकि वर्तमान दर से जन्मदर चलती रही तो सन् 2000 तक देश की जनसंख्या 100 करोड़ तक पहुंचने का अनुमान है।

एशिया एवं प्रशान्त क्षेत्र में "स्वास्थ्य जनसंख्या और विकास" विषयक रिपोर्ट में एशियाई बैंक ने कहा है कि घनी बस्तियों या गन्दी बस्तियों में रहने वाले गरीब सदस्यों को छूत के रोग और मच्छर-मक्खियों के कारण फैलने वाले रोग हो जाते हैं तथा कम आमदनी समुदाय में शिशु मृत्युदर भी अधिक होती है। इन देशों में राष्ट्रीय उत्पादन दर कम और शिशु-मृत्युदर अधिक है।

इसका सबसे बड़ा कारण यही है कि ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी पूर्ण चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवाएं समय पर नसीब नहीं होती हैं। इसलिए इस दिशा में अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। कहा भी जाता है कि "जो बच्चे विनोद पूर्ण स्वभाव के नहीं होते वे कभी महान नहीं बन पाते क्योंकि जिन पेड़ों पर फूल नहीं आते, उन पर कभी फल भी नहीं लगते।" अत: बच्चों के मानसिक एवं शारीरिक विकास के लिए आरम्भ से ही उनमें प्रसन्नचित्त रहने की आदत डालनी होगी।

आर्थिक प्रशासन एवं वित्तीय प्रबन्ध विभाग
राजकीय महाविद्यालय, राजगढ़ जिला-अलवर
(राजस्थान) 301408

लेखकों से अनुरोध

"कुरुक्षेत्र" के लिए मौलिक लेख, लघु कथा, हास्य व्यंग्य चित्र आदि भेजिए। रचनाएं टाइप कराकर दो प्रतियों में भेजें। जिन रचनाओं के साथ मौलिकता का प्रमाणपत्र नहीं होगा वे स्वीकार नहीं की जा सकेंगी। रचना के प्रकाशन के संबंध में पत्र-व्यवहार न करें। सभी रचनाएं सम्पादक कुरुक्षेत्र, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली 110001 के पते पर भेजें।

बाघों की अचूक गिनती

आर.के.राजू

बाघों की सही संख्या के बारे में लोगों की गलत धारणाओं को दूर करने के लिए सभी बाघ परियोजना क्षेत्रों में बाघों की नए सिरे से गिनती करने की सरकार की घोषणा उन सभी व्यक्तियों के लिए स्वागत योग्य है जो बाघों के संरक्षण के प्रति उत्सुक हैं। यह गणना, बाघ परियोजना की 20वीं वर्षगांठ मनाने के लिए सर्वथा उपयुक्त प्रयास हो सकती है। बाघ परियोजना एक अप्रैल, 1973 को प्रारंभ हुई थी।

आज बाघ परियोजना में 18 बाघ अभयारण्य सम्मिलित हैं जो 13 राज्यों के कुल 28,017 वर्ग कि0मी0 क्षेत्र में फैले हुए हैं। केन्द्र व राज्य समान रूप से इसका व्यय वहन करते हैं। इस परियोजना के लिए अंतर्राष्ट्रीय वन्य प्राणी कोष ने 10 लाख डालर की राशि दी है। बाघों की संख्या 1972 में 268 थी जो धीरे धीरे बढ़कर 1989 में 1,327 हो चुकी है।

इस प्रगति से उत्साहित होकर, मध्य प्रदेश के छिंदवाड़ा एवं सिवनी जिलों में बहने वाली पेंच नदी के तट पर 19वां बाघ अभयारण्य बनाने का निर्णय किया गया है। पेंच नेशनल पार्क नामक, इस वनस्पति एवं जीव जन्तुओं से भरे-पूरे वन में बाघों की वर्तमान संख्या 25 है।

बाघों की संख्या में कमी होने के कई कारण हैं - बाघ क्षेत्र का संकुचित होते जाना। इसके वास स्थान में अशांति उत्पन्न होना, इनके भोज्य पशुओं का नाश होना, चोरी छिपे इनका शिकार, पालतू पशुओं की रक्षा हेतु इन्हें जहर दिया जाना तथा कुछ हद तक इनका आखेट। मुगलों, तत्पश्चात् अंग्रेज एवं महाराजाओं द्वारा अत्यधिक आखेट इस पशु के ह्रास के उत्तरदायी हैं। यद्यपि सभी महाराज एक से नहीं थे। कुछ ने मैसूर, त्रिवेन्द्रम और ग्वालियर में उत्कृष्ट प्राणी-उद्यान की स्थापना की। रीवा के महाराजा के कारण ही हम अमूल्य सफेद बाघ को अपने वन्य जीवन की विरासत के एक भाग के रूप में पा सके? पूरे देश के बाघों की संख्या बाघ परियोजना के बाघों की संख्या से अधिक है। 1972 में यह संख्या 1827 से घटकर 1989 में 4334 तक जा पहुंची थी।

बाघों की संख्या का अनुमान सर्वदा ही बढ़ा रहा है। सरकार द्वारा पुनर्गणना के निर्णय का एक कारण यह भी हो सकता है। ई.पी.जी. जैसे सुप्रसिद्ध प्रकृति-वैज्ञानिक तथा जिम कार्बेट जैसे संरक्षणवादी भी बाघों की सही संख्या का अनुमान लगाने में असमर्थ रहे। 1965 में ई.पी.जी ने जहां 4000 बाघों का अनुमान लगाया, कार्बेट ने 1955 में 2000 बाघों के अस्तित्व का दावा किया। उन्होंने यह अनुमान निश्चित रूप से स्वयं देखकर ही लगाया होगा क्योंकि वे वन्य जीव प्रेमी थे।

1972 में, पंजों के निशान द्वारा गणना करने की एक वैज्ञानिक पद्धति अपनायी गयी। बाघ परियेजना में भी वर्ल्ड वाइल्ड लाइफ फण्ड के विशेषज्ञों द्वारा इसी पद्धति को अपनाया गया। सिंहों के विपरीत, बाघों के अपने निजी निवास क्षेत्र होते हैं तथा गणना करने वाले को अपना ध्यान ऐसे ही निवास क्षेत्रों पर केन्द्रित करना पड़ता है। फिर भी पंजों के निशान में दूसरे पंजों के निशान मिल जाना भी संभव है।

यद्यपि बाघ परियोजना की सफलता में कभी कोई संदेह नहीं रहा है लेकिन इसकी कुछ समस्यायें हैं। इसकी सबसे बड़ी त्रुटि अनुसंधान के क्षेत्र में है। समीपवर्ती क्षेत्रों के पशुओं द्वारा अभयारण्यों में चरने के लिए आना सबसे बड़ा क्षोभ का कारण है।

19वें बाघ अभयारण्य का प्रादुर्भाव एक समस्या के साथ हो सकता है। इसमें दो ग्राम मुख्य क्षेत्र में तथा कुछ ग्राम अंतस्थ क्षेत्र में स्थित हैं। वैसे वन्य जीवन सुरक्षा अधिनियम, 1972 में इस संदर्भ में पर्याप्त व्यवस्था की गई है।

आज बाघ परियोजना की गिनती एक आदर्श संरक्षणवादी योजना के रूप में की जाती है। घटते हुए भारतीय हाथियों हेतु एक ऐसी ही योजना का शुभारंभ होने ही वाला है। वर्ल्ड वाइल्ड लाइफ फण्ड के अनुरोध पर चीन ने भी अपने पांडाओं के संरक्षण हेतु ऐसी ही परियोजना को अपनाया है तथा रूस ने अपने साइबेरियाई बाघों के लिए ऐसा ही प्रयास किया है। यह जानना उपयोगी रहेगा कि चीन एवं रूस किस गणना पद्धति का पालन करेंगे। भारत में सही गणना बाघ परियोजना की ख्याति में वृद्धि करेगी और संरक्षण कार्यक्रम को काफी आगे तक बढ़ायेगा।

पत्र सूचना कार्यालय से साभार]

उन्नत घासों द्वारा ऊसर भूमि सुधारें

✍ बनवारी लाल सुमन एवं मंजू सुमन

अपने देश में लगभग 70 लाख हेक्टेयर भूमि क्षार एवं लवणों की अधिकता के कारण प्रभावित है। वैसे ता भारत क भू-भाग का लगभग आधा भाग किसी न किसी प्रकार की बंजर भूमियों से प्रभावित रहता है जिसमें मुख्य रूप से जल के कटाव द्वारा मिट्टी का बहना, वायु की तीव्र गति से रेतीली (मरु) भूमि का एक स्थान से दूसरे स्थान को स्थानान्तरित हो जाना, विभिन्न नदियों के द्वारा खादरों का निर्माण तथा मिट्टी को बहाकर ले जाना तथा आधुनिक कृषि में पानी का उचित प्रबंध न होने से पानी का भराव (जलक्रांत) क्षेत्र जिसके फलस्वरुप उपजाऊ भूमि विभिन्न कारणों से ऊसर एवं रेत के रूप में परिवर्तित होती जा रही है। पानी के स्रोतों के बढ़ने से रेह एवं ऊसर भूमियों का क्षेत्रफल जिन स्थानों पर नहीं था वहां भी बनने लगा है।

ऊसर, क्षारीय और लवणीय भूमियों को मुख्य रूप से कल्लर, रेह ऊसर थुर नामों से जाना जाता है। इन भूमियों में मृदा पी.एच.मान 8.5 से अधिक होता है क्योंकि इन भूमियों में सोडियम की मात्रा 15 प्रतिशत तथा उससे अधिक होने लगती है इसके साथ साथ भूमि का पी.एच. मान अधिक होता जाता है।

ऊसर भूमियां मुख्य रूप से शुष्क एवं अर्द्धशुष्क जलवायु वाले भागों में विस्तार से पाई जाती हैं इन भूमियों की मुख्य विशेषता यह होती है कि भूमि के अंदर लवण कहीं भी एक जैसी अवस्था में नहीं पाये जाते हैं। फलस्वरुप खाद्यान्न एवं नकदी फसलें इन भूमियों पर नहीं उगाई जा सकतीं। लवणीय एवं क्षारीय भूमियां मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश, गुजरात, पश्चिम बंगाल, राजस्थान, पंजाब, महाराष्ट्र, हरियाणा आदि राज्यों में पाई जाती हैं।

लवणों एवं क्षारों की अधिकता के कारण इन भूमियों की भौतिक दशा अच्छी नहीं होती है जिससे पानी का नीचे की सतहों में रिसना बन्द हो जाता है तथा भूमि की सतह में 50 से 100 से.मी. की गहराई पर एक कड़ी परत बन जाती है जिसके परिणामस्वरुप वर्षा का अधिकांश जल रन ऑफ (अपवाह) द्वारा भूमि की सतह से नीचे की ओर बह जाता है और यह जल निचले क्षेत्रों पर पहुंच कर भूमि कटाव द्वारा बाढ़ की समस्या पैदा कर देता है।

आजकल के समय में बढ़ती हुई जनसंख्या का पेट पालने के लिए आम नागरिकों से लेकर प्रशासन तथा सत्ता के पदाधिकारी चिन्तित हैं कि किस प्रकार आम आदमी को भरपेट भोजन प्राप्त हो सके। कृषि योग्य भूमि सीमित है। महानगरों, नगरों, कस्बों से लेकर गांव के आम नागरिक अच्छी, उपजाऊ भूमि को मकान, उद्योग सड़कों में परिवर्तित करते जा रहे हैं जिसके कारण कृषि योग्य भूमि कम होती जा रही है। अब बढ़ती आबादी का पेट भरने के लिए साधन सीमित हैं तब आस-पास बंजर पड़ी भूमि का समुचित उपयोग आवश्यक है। क्षारीय एवं लवणीय मृदायें बंजर भूमि का एक अंश हैं विभिन्न कृषि अनुसंधान केन्द्रों एवं कृषि विश्व-विद्यालयों द्वारा क्षारीय एवं लवणीय भूमियों के सुधार हेतु यांत्रिक विधियों तथा रसायनों के प्रयोग द्वारा सुधारने की सिफारिश की गई है।

यांत्रिक विधियों द्वारा सुधार

किसी भी प्रकार से भूमि का सुधार करने से पूर्व कोई न कोई कर्षण क्रिया भूमि पर करनी होगी - जिसमें हल से जुताई, भूमि को विभिन्न परतों में पलटना तथा बड़ी नालियों द्वारा पानी का निष्कासन सम्मिलित है। इन क्रियाओं से भूमि के कणों का विस्थापन प्रारम्भ होता है। फलस्वरुप मृदा की क्रियाशीलता बढ़ती जाती है जिससे विभिन्न पेड़ एवं घासें प्राकृतिक रुप से क्षारीय क्षितिज पर उभरने लगते हैं और दुहरी व्यवस्था यांत्रिक क्रिया-कलाप तथा वनस्पतियों से भूमि पर सुधार होने लगते हैं।

रासायनिक विधियों द्वारा सुधार

भारतीय आम नागरिकों की दृष्टि से रासायनिक विधि द्वारा ऊसर भूमि का सुधार लगभग मुश्किल है। विभिन्न प्रयोगों के

आधार पर जिन भूमियों का की पी.एच. मान 8.5 से 10.5 तक है और क्षारीय अवस्था में है। उनके सुधार हेतु 50 से 180 क्विंटल पाइराइट अथवा जिप्सम की आवश्यकता होती है।

सोडियम

	जिप्सम	
भूमि कण +	या ------	भूमि कण
	पाइराइट	
केल्शियम सल्फेट		सोडियम सल्फेट

इस रसायन का भूमि पर प्रयोग करने के 500 से 650 रूपये प्रति हेक्टेयर का खर्चा आता है जो कि भारतीय आम किसानों के लिए लगभग नामुमकिन है क्योंकि रसायनों के प्रयोग के बाद ऊसर भूमि पर पानी का प्रबन्ध लगातार जारी रखना होता है। यदि रसायनों के साथ पानी का प्रबन्ध न किया जाए तब रासायन अपनी क्रियाशीलता प्रदर्शित नहीं कर पाते हैं। दूसरी ओर भारतीय दशाओं में भूमि की सिंचाई हेतु कुल 30 प्रतिशत भूमि के लिए पानी उपलब्ध है जिसके द्वारा खाद्यान्न नकदी, एवं अन्य फसलों के साथ विभिन्न कृषि और कृषि से संबंधित धन्धों में पानी का प्रयोग किया जाता है। दूसरी ओर ऊसर भूमियां अधिकतर गांव की फालतू भूमियां है जो बंजर अवस्था में हैं इस भूमियों पर प्रभावशाली अथवा इस प्रकार के लोगों का अधिकार है कि वह उसे सुधारना नहीं चाहते। अत: सुधार की तकनीकी उपलब्ध रहने के बाद भी यह भूमियां बंजर अवस्था में पड़ी रहती हैं।

उपयुक्त उन्नत घासें

ऊसर भूमियों पर इस प्रकार की घासें उगती हैं जिन्हें पशु नहीं खाते तथा उनका दूसरा उपयोग भी नहीं होता है। लेकिन उन्नत घासों की खेती द्वारा ऊसर भूमियों का आसानी से सुधार किया जा सकता है। जिनका उल्लेख किया जा रहा है।

पैरा घास (ब्रेकेरिया म्यूटिका)

इस घास को वाटर घास तथा बफेलो घास भी कहा जाता है क्योंकि पानी की अधिकता तथा दलदली स्थानों पर यह अधिक बढ़ती है तथा भैंस के समान पानी में लोट-पोट होती है - इस घास की उत्पत्ति ब्राजील में हुई थी। यह सर्व प्रथम भारत में पूना में लाई गई थी उसके बाद उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, आसाम से लेकर तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक तक में पाई जाती है। पानी की पूर्ति की अवस्था में यह घास किसी भी स्थान पर उगाई जा सकती है।

कल्लर घास : (लेप्टोक्लोआ फुस्का)

इस घास को घनेर गाडर, हारी तथा बड़ी बट्ट भी कहा जाता है। यह बारहमासी घास है तथा सिंचाई के समुचित साधन उपलब्ध रहने पर बढ़ती रहती है तथा आठ मीटर की ऊंचाई तक बढ़ती है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान, गुजरात, पंजाब में बहुतायत पाई जाती है हरे चारे के रूप में काटकर खिलाने पर इसका पौष्टिक चारा पशुओं के लिए लाभदायक होता है।

राडेस घास (क्लोरिस गयाना)

इस घास की उत्पत्ति दक्षिण अफ्रीका में हुई थी। भारत में सर्वप्रथम यह घास बेंगलौर में 1915 में लाई गई थी। यह पौष्टिक घास होती है तथा पाचक भी होती है। इसमें पत्तियों की मात्रा अधिक होती है। इसे काटकर कुट्टी के रूप में तथा खड़ी फसल को पशुओं द्वारा चरागाह के रूप में चराया जा सकता है।

नन्दी घास (सोटारिया सौफेसीलेटा)

यह अत्यन्त मुलायम एवं पाचक घास है। यह पशुओं के लिए साल भर हरे चारे के रूप में प्रयुक्त की जा सकती है। घासों के साथ चारा, लकड़ी तथा ईंधन के लिए सफेदा सूबबूल, विलाइती बबूल, नीम, शीशम, सिरस, अर्जुन आदि वृक्षों को ऊसर भूमि पर उगाया जाए तब भूमि सुधार के साथ-साथ चारे की पैदावार तथा अधिक आमदनी प्राप्त की जा सकती है।

भारतीय चारागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान,
झांसी 284 003

डाक-तार पंजीकरण संख्या : (डी (डी एल) 12057793
पूर्व भुगतान के बिना डी.पी.एस.ओ. दिल्ली में डाक में डालने की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एल)-55

Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at DPSO, Delhi-54

हिन्दी की सर्वाधिक बिकने वाली सामान्य ज्ञान पत्रिका

विभिन्न प्रतियोगिता परीक्षाओं में सम्मिलित होने वाले अभ्यर्थियों के उचित मार्गदर्शन के लिए

प्रतियोगिता दर्पण

विगत 15 वर्षों से कड़ी मेहनत व अथक प्रयासों द्वारा परीक्षोपयोगी सामग्री उपलब्ध करा रहा है

इन वर्षों के अनुभव और परीक्षा में बढ़ती हुई चुनौतियों को ध्यान में रखते हुए सिविल सेवा परीक्षा तथा अन्य प्रतियोगिता परीक्षा के अभ्यर्थियों के लिए परीक्षोपयोगी सीरीज का प्रकाशन किया गया है

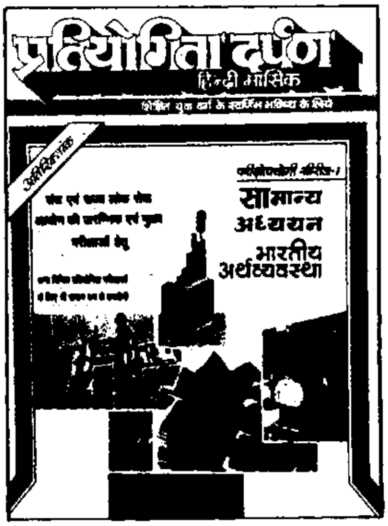

परीक्षोपयोगी सीरीज 1

सामान्य अध्ययन

मूल्य : 40/- मात्र

परीक्षोपयोगी सीरीज 2

सामान्य अध्ययन

भूगोल (भारत एवं विश्व)

मूल्य : 40/- मात्र

परीक्षोपयोगी सीरीज 3

सामान्य अध्ययन

भारतीय इतिहास

परीक्षोपयोगी सीरीज 4

मूल्य : 40/- मात्र

मूल्य : 40/- मात्र

अपने निकटतम पुस्तक विक्रेता से खरीदें अथवा पूरा मूल्य मनीऑर्डर द्वारा भेजकर पत्रिका मंगाएं

प्रतियोगिता दर्पण 2/11 ए, स्वदेशी बीमा नगर, आगरा– 282 002 फोन : 61802, 63676, फैक्स : (0562) 63305